वनाधिकार की राह

प्रशिक्षण मॉड्यूल

भाग-2

माड्यूल का शीर्षक	:	**"वनाधिकार की राह" मॉड्यूल-2**
लेखक	:	**अनिल गर्ग**
सहयोग	:	**प्रमोद विश्वकर्मा**
सम्पादन	:	**राकेश कुमार मालवीय**
वर्ष	:	**2025**
प्रतियां	:	**300**
प्रकाशक	:	**बुनियाद बैतूल**
पता	:	**कोठी बाजार, बैतूल**
सहयोग	:	**अजीम प्रेमजी फाउंडेशन**
मुद्रक	:	**अमित प्रकाशन, भोपाल**
ई-मेल	:	**buniyadsws@gmail.com**
मोबाइल	:	**9425636979**

भूमिका

मध्य प्रदेश में सामुदायिक वन अधिकार एवं मान्यता

जनवरी 2008 से अनुसूचित जनजाति एवं अन्य परंपरागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) कानून 2006 लागू हुआ, जिसके आधार पर वन भूमि पर समाज के अलग-अलग अधिकारों को सामुदायिक वन अधिकारों के तौर पर मान्यता का प्रावधान किया गया।

इस कानून में 1950 में संविधान लागू होने के पहले और संविधान लागू होने के बाद संसाधनों पर समाज के अधिकारों को लेकर भारत सरकार एवं राज्य सरकार थोड़ा-बहुत होमवर्क कर लेतीं तो वर्तमान में 18 साल बाद सामुदायिक वन अधिकारों की मान्यता का प्रतिशत कम से कम 75 के ऊपर होता, जो 10 प्रतिशत भी नहीं हो पाया।

सामुदायिक वन अधिकारों को लेकर सरकार ने अधिकारियों को प्रशिक्षण दिलवाया। स्वयंसेवी संगठनों एवं जन संगठनों ने भी कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण दिया। यह सिलसिला वर्तमान में भी चल ही रहा है।

भारत की संसद में वर्ष 2005 का प्रारंभिक प्रारूप प्रस्तुत हुआ, जिसके बाद इस लेखक ने पुस्तक भी लिखी "ऐतिहासिक अन्याय जिम्मेदार कौन"। हमने पुस्तक में आजादी के पहले एवं आजादी के बाद सामुदायिक संसाधनों की प्रचलित वैधानिक व्यवस्था का प्रमाणों के साथ उल्लेख कर अनुरोध किया था कि इसे यथावत स्वीकार कर लिया जाए, ताकि राज्य के राजस्व ग्रामों में सामुदायिक वन अधिकारों की मान्यता के अभियान की आवश्यकता ही नहीं हो।

मध्य प्रदेश में 26 जनवरी 1950 को संविधान लागू होने पर समाज के संसाधनों पर अधिकारों को राजस्व विभाग नियंत्रित करता रहा, जबकि वन विभाग आरक्षित वन क्षेत्रों पर समाज के अधिकारों को नियंत्रित करता रहा है।

वन विभाग ने राजस्व विभाग द्वारा नियंत्रित संसाधनों पर कब्जा करना प्रारंभ किया। उन्हें भारतीय वन अधिनियम 1927 की धारा 29 के अनुसार अधिसूचित कर अपना कब्जा करना प्रारंभ किया और उसी के बाद अधिकारों के नियंत्रण एवं प्रबंधन में भूमिकाएँ बदलती नजर आईं, संतुलन भी बदल गया।

मध्य प्रदेश शासन के जनजातीय कार्य विभाग ने इन बदलती हुई स्थितियों के आधार पर पत्र जारी कर निर्देश दिए, लेकिन उनका पालन नहीं करवा पाया।

जनजातीय कार्य विभाग को राज्य के वन विभाग ने सामुदायिक अधिकारों के वैधानिक विषयों पर सहयोग नहीं किया, बल्कि मनमाने तरीके से हठधर्मिता दिखाते हुए असहयोग की नीति अपनाई।

ये दोनों ही कारण राज्य में सामुदायिक वन अधिकारों की मौजूदा चिंताजनक स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं। राजस्व ग्रामों के पटवारी मानचित्र में राजस्व विभाग ने कानून और नियमों को ताक पर रखकर बड़े बदलाव किए।

राजस्व विभाग ने राज्य शासन, वन विभाग के पत्र दिनांक 2 अप्रैल 1971 के आधार पर पटवारी मानचित्र में भारतीय वन अधिनियम 1927 की धारा 4 में अधिसूचित वनखंड की सीमा रेखा दर्ज कर ली, लेकिन इस सीमा रेखा में शामिल खसरों का ब्यौरा निस्तार पत्रक, अधिकार अभिलेख एवं खसरा पंजी में दर्ज नहीं किया।

राजस्व विभाग ने ही 1980 के बाद भा.व.अ. 1927 की धारा 29 और धारा 4 की अधिसूचना में अधिसूचित भूमियों को वन भूमि मानकर पटवारी मानचित्र एवं खसरा पंजी से पृथक कर दिया। इस कार्यवाही के पूर्व वन विभाग द्वारा धारा 34अ के अनुसार डीनोटिफाइड कर वन विभाग के अभिलेखों एवं मानचित्रों से पृथक की गई भूमि को भी पृथक करने की कार्यवाही की गई।

राजस्व विभाग ने पटवारी मानचित्र में दर्ज वनखंडों की सीमा रेखा में शामिल भूमि में आने वाली भूमियों को राजपत्र में धारा 34अ के अनुसार डीनोटिफाइड किया, गैर-वानिकी कार्यों के लिए आवंटित किया, भूमिहीन काबिजों को आवंटित किया, ग्रामीण अधोसंरचना विकास में भूमि का उपयोग किया, लेकिन इसकी कोई प्रविष्टि पटवारी मानचित्र में दर्ज नहीं की गई।

राजस्व ग्राम, राजस्व का पटवारी मानचित्र, राजस्व विभाग की कार्यवाही आदि का उल्लेख किए जाने का मुख्य कारण यह है कि कुछ बुद्धिजीवी एवं विशेषज्ञ डिजिटल नक्शा बनाकर उसे सामुदायिक अधिकारों का सर्वोत्तम एवं अंतिम विकल्प बताने का पुरजोर प्रयास कर रहे हैं।

यह प्रयास शासकीय स्तर पर मान्य कर लिया जाएगा, क्योंकि शासकीय अमला, खासकर राजस्व विभाग एवं वन विभाग के साथ ही जनजातीय कार्य विभाग के अधिकारी इस कार्य को मात्र एक शासकीय कार्य मानकर अपनी जवाबदेही एवं जिम्मेदारी से ही इंकार कर रहे हैं।

हम मध्य प्रदेश में संसाधनों पर सामुदायिक वन अधिकारों के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी आपके साथ साझा कर रहे हैं। हम उम्मीद करते हैं कि यह जानकारी उपयोगी होगी एवं समाज के अधिकारों की गारंटी का आधार बनेगी।

- **अनिल गर्ग**, बुनियाद

वन अधिकार के आदेशों का अनुपालन क्यों नहीं हुआ?

वन अधिकार कानून 2006 के अनुसार व्यक्तिगत वन अधिकार हो या सामुदायिक वन अधिकार हो, राजस्व विभाग के अभिलेखों, दस्तावेजों, पटवारी मानचित्र एवं 26 जनवरी 1950 के बाद की गई समानान्तर कार्यवाहियों को आधार बनाया जाना आवश्यक है, लेकिन ऐसा या तो हुआ नहीं, या फिर हुआ तो उसे अभियान के तौर पर नहीं लिया गया।

बड़े झाड़, छोटे झाड़ के जंगल मद में दर्ज जमीनों पर समाज के अधिकार को लेकर प्रमुख सचिव ने दिनांक 10 जून 2008 को आदेश जारी किया, लेकिन उसका पालन नहीं किया गया।

भारतीय वन अधिनियम 1927 की धारा 4 में अधिसूचित, धारा 5 से 19 तक की जांच के लिए लंबित जमीनों से संबंधित दिनांक 16 अप्रैल 2015 को जारी आदेश का भी पालन नहीं हुआ।

ये दोनों आदेश पटवारी मानचित्र एवं अन्य राजस्व अभिलेखों में दर्ज संसाधनों एवं अधिकारों की पुष्टि करते हैं।

सामुदायिक संसाधन और अधिकार

भारत में पारंपरिक ग्रामीण व्यवस्था में सामुदायिक संसाधनों और निस्तारी अधिकारों का प्रबंधन स्थानीय समुदायों के माध्यम से प्रभावी ढंग से होता था। आज़ादी के बाद भूमि सुधार और संसाधनों के न्यायसंगत वितरण के लिए कई संवैधानिक और कानूनी प्रावधान किए गए, जिनका उद्देश्य भूमिहीनों को अधिकार देना और सामुदायिक संसाधनों की रक्षा करना था।

हालांकि, 1950 के बाद राजस्व और वन विभागों द्वारा समानांतर कार्यवाहियों के चलते कई स्थानों पर सामुदायिक और सार्वजनिक उपयोग की भूमि को वन भूमि घोषित कर दिया गया। इससे स्थानीय समुदायों के पारंपरिक अधिकार कमजोर हुए और "ऐतिहासिक अन्याय" की स्थिति उत्पन्न हुई, जिसे बाद में वन अधिकार कानून 2006 में भी स्वीकार किया गया।

प्रजातांत्रिक व्यवस्था ने समय-समय पर कई कानूनों और संशोधनों (जैसे पंचायती राज, पेसा कानून 1996, और वन अधिकार कानून 2006) के माध्यम से ग्रामसभा और समुदायों को संसाधनों पर अधिकार देने का प्रयास किया। इसके बावजूद, प्रशासनिक स्तर पर विशेषकर कलेक्टर और राजस्व अधिकारियों की भूमिका अपेक्षित रूप से प्रभावी नहीं रही, जिससे कई मामलों में समुदायों के अधिकारों का हनन हुआ।

सर्वोच्च न्यायालय के कुछ फैसलों और वन कानूनों की व्याख्या ने भी कई बार सामुदायिक भूमि को वन भूमि के रूप में परिभाषित कर दिया, जिससे स्थिति और जटिल हुई।

कुल मिलाकर, भारत में सामुदायिक संसाधनों के प्रबंधन का इतिहास एक ओर अधिकारों को मान्यता देने के प्रयासों का है, तो दूसरी ओर इन अधिकारों के कमजोर पड़ने और प्रशासनिक विसंगतियों का भी। आज आवश्यकता है कि कानूनी प्रावधानों के अनुरूप ग्रामसभाओं को उनके अधिकार प्रभावी रूप से दिए जाएं और सामुदायिक संसाधनों का न्यायसंगत प्रबंधन सुनिश्चित किया जाए।

प्रशिक्षण के लिए मुख्य संदेश

- 5वीं अनुसूची आदिवासी अधिकारों की सुरक्षा का मजबूत संवैधानिक आधार है।
- राज्यपाल की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है, लेकिन उसे प्रभावी रूप से लागू करना जरूरी है।
- राजस्व अभिलेख समुदाय के अधिकारों का प्रमाण हैं।
- सामुदायिक संसाधनों पर अधिकार केवल कानूनी नहीं, बल्कि आजीविका और पहचान का सवाल है।
- सही जानकारी से समुदाय अपने अधिकारों को समझ और प्राप्त कर सकता है।

मॉड्यूल का उद्देश्य

यह मॉड्यूल समुदाय, सीएसओ कार्यकर्ताओं, पंचायत प्रतिनिधियों और फील्ड फैसिलिटेटर्स की **सामुदायिक वनाधिकार (CFR)** पर समझ और क्षमतावृद्धि के लिए तैयार किया गया है, ताकि वे कानूनी अधिकारों को पहचान सकें, दावा प्रक्रिया को समझें और सामुदायिक वन प्रबंधन को सशक्त बना सकें।

लक्ष्य समूह

- ग्राम सभा सदस्य (विशेषकर आदिवासी/वन आश्रित समुदाय)
- सामुदायिक वन प्रबंधन समितियां
- सीएसओ/एनजीओ फील्ड कार्यकर्ता
- पंचायत प्रतिनिधि
- युवा एवं महिला समूह

मॉड्यूल के भाग

- कुछ महत्वपूर्ण शब्दावली और प्रक्रियाएं 8
- राजस्व अभिलेख की जानकारी 13
- पारंपरिक व्यवस्था और बदलाव की शुरुआत..................16
- 5वीं अनुसूची, राज्यपाल की भूमिका 19
  और सामुदायिक अधिकार
- भारतीय वन अधिनियम 1927 के प्रावधान 21
- भू-राजस्व संहिता 1959 के प्रावधान 23
- समाज के अधिकार एवं प्रचलित प्रावधान 25
- ग्रामों के प्रकार 26
- मध्य प्रदेश के 1956 में पुर्नगठन 28
  के पहले और बाद की स्थिति
- भारत में वनों पर समुदाय की ऐतिहासिक निर्भरता...........31
- वन संरक्षण में समुदाय की महत्वपूर्ण भूमिका 34
- वनाधिकार अधिनियम, 2006 37
- वनाधिकार के प्रकार..40
- सामुदायिक वनाधिकार के 43
- संदर्भ में ग्राम सभा की भूमिका..43
- सामुदायिक वनाधिकार क्या है?......................................47
- सामुदायिक वनाधिकार दावा प्रक्रिया 50
- गतिविधि...53

कुछ महत्वपूर्ण शब्दावली और प्रक्रियाएं

आरक्षित वन क्या है?

आरक्षित वन वे जंगल होते हैं जिन्हें सरकार कानूनी रूप से सबसे अधिक सुरक्षा देती है। इन वनों में पेड़ों की कटाई, शिकार, चराई या किसी भी तरह का उपयोग बिना सरकारी अनुमति के पूरी तरह प्रतिबंधित होता है। इनका मुख्य उद्देश्य जंगलों, वन्य जीवों और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करना होता है।आरक्षित वनों में नियम बहुत सख्त होते हैं ताकि प्रकृति को नुकसान न पहुंचे और जंगल सुरक्षित रह सकें।

संरक्षित वन क्या है?

संरक्षित वन वे जंगल होते हैं जिन्हें सरकार द्वारा संरक्षण के लिए घोषित किया जाता है, लेकिन यहां सीमित और नियंत्रित उपयोग की अनुमति होती है। इन वनों में सरकार के नियमों के अनुसार स्थानीय लोगों को कुछ गतिविधियां—जैसे सीमित मात्रा में लकड़ी लेना, चराई या वन उपज एकत्र करना—करने की अनुमति मिल सकती है।संरक्षित वनों का उद्देश्य जंगलों की रक्षा करना और साथ-साथ स्थानीय समुदाय की जरूरतों का संतुलन बनाए रखना होता है। संरक्षित वन भारतीय वन अधिनियम 1927 की धारा 29 के अनुसार राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना के अनुसार संरक्षित वन अधिसूचित किए जाते हैं। संरक्षित वन की सरकार जांच करवाती है, संरक्षित वन को सरकार आरक्षित वन अधिसूचित करती है। संरक्षित वन की जांच पूरी होने तक समाज के जो अधिकार होते हैं वह यथावत प्रचलित रहते हैं।

असीमांकित वन या अवर्गीकृत वन

मध्य प्रदेश वन विभाग अवर्गीकृत वन एवं असीमांकित वन प्रतिवेदित करता है, लेकिन इस संबंध में भा. व. अ. 1927 में कोई प्रावधान ही नहीं है। यह कौन सी जमीन होगी इस बाबत भी कोई स्पष्टता नहीं है।

नारंगी भूमि क्या है ?

नारंगी भूमि वह भूमि होती है जो वन विभाग के अंतर्गत आती है, लेकिन जिसे स्थानीय लोगों को खेती या निवास के लिए अस्थायी या परंपरागत रूप से उपयोग करने दिया गया हो। सरल शब्दों में, यह ऐसी जमीन है जो कागज़ों में तो वन भूमि होती है, लेकिन लंबे समय से उस पर गांवों का बसेरा, खेती या अन्य उपयोग होता आ रहा है। मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों में नारंगी भूमि शब्द का प्रयोग अधिक होता है। यहां इस तरह की भूमि पर रहने वाले लोगों के वनाधिकार और भूमि अधिकार को लेकर कई बार विवाद और प्रक्रियाएं चलती रहती हैं।

भूमि वन अधिकारियों द्वारा नारंगी भूमि के नाम पर भ्रम उत्पन्न किया गया है। वन अधिकारियों के अनुसार संरक्षित वन भूमि के सर्वे डिमार्केशन में जिन जमीनों को वानिकी प्रबन्धन के लिए उपयुक्त समझा गया उनके वनखंड बनाए और उन्हें पटवारी मानचित्र मे हरे रंग से रंगा गया।

सर्वे में जिन जमीनों को अनुपयुक्त पाया गया या वनखंड के बाहर छोड़ा गया उन जमीनों को पटवारी मानचित्र में नारंगी रंग से रंगा गया, इन्हीं जमीनो को वन विभाग ने राजस्व विभाग को अन्तरित किया, गैर वानिकी प्रयोजनों के लिए आवंटित किया, राजपत्र में धारा 34 अ के अनुसार डीनोटीफाइड किया, लेकिन वन विभाग ने अपने किसी अभिलेख में आवश्यक प्रविष्टि दर्ज नहीं की। वन विभाग ने इन्हीं धारा 4 एवं धारा 34 में अधिसूचित भूमि और अन्तरित आवंटित भूमि को नारंगी भूमि सर्वे में शामिल कर लिया।

बडे झाड़, छोटे झाड़ के जंगल मद में दर्ज जमीन

सर्वोच्च अदालत ने टी. एन. गोदाबर्मन की सिविल याचिका क्रमांक

202/95 में दिनांक 12 दिसम्बर 1996 को आदेश दिया जिसमें मुख्य रूप से जंगल मद में दर्ज जमीन याने बड़े झाड़, छोटे झाड़ के जंगल, जगलात, गुडपी जंगल, जंगल जला, जंगल खुर्द मद की जमीनों को वन संरक्षण कानून 1980 के दायरे में आने वाली वन भूमि आदेशित किया। न्यायालय ने उन जमीनों को भी वन भूमि आदेशित किया जिन पर प्रति हेक्टयर 200 वृक्ष स्थित है।

हम यहां विशेष उल्लेख करना चाहते हैं :- शासन ने खासकर वन विभाग ने राजस्व अभिलेखों में जो जमीन जंगल मद याने बड़े झाड़. छोटे झाड़ के जंगल जंगलात झुड़पी जंगल जगल जला, जंगल खुर्द आदि मदों में दर्ज रही है उन्हें राजपत्र में 1949 से 1958 तक संरक्षित वन भूमि अधिसूचित किया।

वन विभाग ने इन्हीं जमीनों को संरक्षित वन सर्वे डिमार्केशन में शामिल किया, धारा 5 एवं धारा 34 में अधिसूचित किया। वन विभाग ने इन्हीं जमीनों को राजस्व विभाग को अन्तरित और आवंटित करना बताया। वन विभाग एवं राजस्व विभाग ने अपनी अपने अपने अभिलेखों में आवश्यक संशोधन नहीं किया, आवश्यक प्रविष्टी दर्ज नहीं की। यह समस्त भूमि आजादी के पहले पटवारी मानचित्र एवं अन्य राजस्व अभिलेखों में दर्ज रही है, आजादी के बाद भी दर्ज रही है वर्तमान में भी दर्ज है।

राजस्व भूमि क्या है ?

पटवारी मानचित्र, मिसल बन्दोबस्त, बाजिबुल अर्ज, गांव कायदा, निस्तार पत्रक, अधिकार अभिलेख, जमाबन्दी, किस्तबन्दी, खसरा पंजी में दर्ज जमीनों को राजस्व भूमि कहा जाता है।

राजस्व भूमि दो प्रकार की होती है।

पहला वह भूमि जो भूस्वामी हक की भूमि हो, शासन द्वारा पट्टे पर दी गई भूमि हो, ग्राम कोटवार को दी गई सेवा भूमि हो।

दूसरी वह भूमि जो अलग-अलग सार्वजनिक, निस्तारी प्रयोजनों के लिए दर्ज भूमि हो, जिन्हें अलग-अलग मद में भी दर्ज किया जाता है। इस भूमि में नदी-नाले, सड़क-रास्ते, इमारत, पहाड़-चट्टान, बड़े झाड़, छोटे झाड़ का जंगल, घास, चरनोई, गोचर, सरना, करात आदि जमीनें भी आती हैं।

राजस्व भूमि वह भूमि होती है जो राज्य सरकार के राजस्व विभाग के अंतर्गत आती है। सरल शब्दों में, यह वह जमीन है जिसका रिकॉर्ड सरकार के राजस्व अभिलेखों (खसरा-खतौनी) में दर्ज होता है और जिस पर खेती, आवास या अन्य उपयोग किया जाता है।

राजस्व भूमि में वह भूमि है जो राजस्व अभिलेखों में छोटे झाड़ के जंगल, बड़े झाड़ के जंगल, होडप जंगल, जंगलात, जंगल-जला, जंगल खुर्द मद में दर्ज होने के कारण सर्वोच्च अदालत द्वारा वन भूमि मानी गई है, इन्हीं भूमि पर सामुदायिक अधिकारों को मान्यता दी जानी है।

वह राजस्व भूमि जो वानाधिकार की दर....

राजस्व भूमि की खास बातें—

- यह भूमि किसान या व्यक्ति के नाम दर्ज हो सकती है।
- इस पर लगान/भूमि कर लिया जाता है।
- भूमि का क्रय-विक्रय, बंटवारा और नामांतरण किया जा

सकता है।

- इसका उपयोग खेती, मकान, दुकान आदि के लिए किया जाता है।

संक्षेप में, वन भूमि वन विभाग के अधीन होती है, जबकि राजस्व भूमि राजस्व विभाग के अधीन होती है।

राजस्व भूमियों की मद एवं प्रयोजन

राजस्व विभाग गैर खाता मद की जमीन, यानी दखल रहित जमीन को सामान्यतः दो तरह से पृथक-पृथक दर्ज करता है।

राजस्व विभाग मद यानी बड़े झाड़, छोटे झाड़ का जंगल, पहाड़-चट्टान, पठार, घास, चरनोई, गोचर, चारागाह, सरना, करात, नदी-नाले, सड़क-रास्ते आदि मदों में दखल रहित जमीनों को दर्ज करता है।

इन्हीं जमीनों को प्रयोजन यानी गोठान, बालियान, कब्रिस्तान, श्मशान, मृत मवेशी चीरने-फाड़ने के स्थान, लघु वनौषधि बीनने, जलाऊ लकड़ी, चारा आदि लाने के स्थान, पाठशाला एवं खेलकूद के मैदान, गौण खनिज लाने के स्थान, तन सड़ाने और सिंचाई आदि प्रयोजन यानी अधिकार के तौर पर भी दर्ज करता है।

समाज के अधिकार एवं प्रचलित प्रावधान

राजस्व अभिलेखों में दर्ज भूमियों पर समाज के अधिकार मान्य हैं। म.प्र. भू-राजस्व संहिता, 1959 के अध्याय 18 में गैर-खातेदार भूमि के संबंध में प्रावधान दिए गए हैं।

इसके अतिरिक्त संविधान की पांचवीं अनुसूची, पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम, 1996 (पेसा कानून) तथा वन अधिकार अधिनियम, 2006 के अंतर्गत ग्रामसभा एवं ग्राम पंचायत को अधिकार, नियंत्रण एवं प्रबंधन का अधिकार प्राप्त है।

वन भूमि के डिनोटिफिकेशन से क्या आशय है ?

वन भूमि के डिनोटिफिकेशन से आशय है किसी भूमि का कानूनी रूप से वन की श्रेणी से बाहर किया जाना। सरल शब्दों में, जब कोई क्षेत्र जो पहले आरक्षित वन, संरक्षित वन या वन भूमि के रूप में अधिसूचित (नोटिफाइड) था, उसे सरकारी अधिसूचना (आदेश) के माध्यम से वन का दर्जा समाप्त कर दिया जाता है, तो उसे वन भूमि का डिनोटिफिकेशन कहा जाता है।

इसका मतलब क्या होता है?

- वह भूमि अब वन कानूनों के अंतर्गत नहीं रहती
- उस पर गैर-वन उपयोग (जैसे खेती, सड़क, भवन, उद्योग आदि) संभव हो सकता है
- भूमि को राजस्व भूमि या किसी अन्य श्रेणी में बदला जा सकता है

महत्वपूर्ण बिंदु:

- डिनोटिफिकेशन सरकारी प्रक्रिया से ही होता है, इसके लिए अक्सर राज्य सरकार और कई मामलों में केंद्र सरकार की अनुमति आवश्यक होती है
- वन संरक्षण अधिनियम, 1980 के तहत वन भूमि को गैर-वन उपयोग में लाने पर सख्त नियम लागू होते हैं

संक्षेप में, वन भूमि को उसके वन-स्वरूप से कानूनी रूप से हटाना ही डिनोटिफिकेशन कहलाता है।

वन खंड किसे कहते हैं ?

वन खंड उस निर्धारित भू-भाग को कहते हैं जिसे वन विभाग द्वारा प्रशासनिक और प्रबंधन की सुविधा के लिए अलग-अलग हिस्सों में बांटा गया होता है। सरल शब्दों में, बड़े वन क्षेत्र का छोटा प्रबंधकीय हिस्सा ही वन खंड कहलाता है। यह वनखंड वन अधिनियम की धारा 20 में अधिसूचित हो उसे आरक्षित वन कहा जाता है, और यदि वह धारा 4 में अधिसूचित हो तो सरकार उसे संरक्षित वन कहती है ।

मुख्य बातें:

- कई वन खंडों को मिलाकर वन मंडल का गठन किया जाता है।
- प्रत्येक वन खंड का एक निश्चित नाम या नंबर होता है।
- वन खंड का प्रबंधन वन रक्षक/बीट गार्ड या संबंधित अधिकारी करते हैं।
- इसी आधार पर जंगल की सुरक्षा, देखरेख, कटाई-रोपण, आग नियंत्रण आदि काम किए जाते हैं।

संक्षेप में वन प्रबंधन के लिए तय किया गया जंगल का हिस्सा वन खंड कहलाता है।

लघु वनोपज से क्या आशय है ?

लघु वनोपज से आशय उन वन उत्पादों से है जो लकड़ी के अलावा वनों से प्राप्त होते हैं और जिनका उपयोग स्थानीय लोग अपनी आजीविका, भोजन और आय के लिए करते हैं। सरल शब्दों में,जंगल से मिलने वाले वे उत्पाद जो लकड़ी नहीं होते, लघु वनोपज कहलाते हैं।

उदाहरण:

तेंदूपत्ता, महुआ, साल बीज, हर्रा, बहेरा, आंवला, लाख, शहद, गोंद, औषधीय जड़ी-बूटियाँ इत्यादि।

मुख्य बातें:

लघु वनोपज का संग्रह मुख्यतः आदिवासी और वन-आश्रित समुदाय करते हैं, यह ग्रामीण आजीविका का महत्वपूर्ण साधन है, सरकार कई राज्यों में इसके संग्रह, प्रसंस्करण और विपणन को बढ़ावा देती है. संक्षेप में,लकड़ी को छोड़कर जंगल से मिलने वाले सभी उपयोगी उत्पाद लघु वनोपज कहलाते हैं।

राजस्व अभिलेख की जानकारी

राजस्व अभिलेख (Revenue Records) बहुत महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि इनमें जमीन का पूरा विवरण दर्ज होता है। इनमें दो तरह की जमीन दर्ज होती है:

1. **निजी भूमि (खाता भूमि)**
2. **सार्वजनिक/सामुदायिक भूमि (गैर-खाता भूमि)**

सामुदायिक भूमि को दो तरीकों से दर्ज किया जाता है:

- **मदवार (प्रकार के अनुसार)**
  जैसे: जंगल, चरागाह, पहाड़, झाड़ी आदि
- **प्रयोजनवार (उपयोग के अनुसार)**
  जैसे:
  - खलिहान
  - कब्रिस्तान/श्मशान
  - स्कूल
  - खेल का मैदान
  - बाजार
  - जल स्रोत
  - निस्तारी (ईंधन, चारा, पानी आदि)

प्रमुख राजस्व अभिलेख

- मिसल बंदोबस्त: पुराने रिकॉर्ड, नक्शे, खसरा, बाजिबुल अर्ज
- बाजिबुल अर्ज: गांव की परंपराएं और निस्तारी अधिकार
- निस्तार पत्रक: सामुदायिक उपयोग की जमीनों का विवरण
- अधिकार अभिलेख: जमीन के अधिकारों की जानकारी
- खसरा पंजी: हर जमीन का रिकॉर्ड
- जमाबंदी/किस्तबंदी: मालिकाना और उपयोग का विवरण
- संशोधन पंजी: जमीन में हुए बदलाव
- पटवारी नक्शा: जमीन की सीमाएं और स्थिति

ये सभी अभिलेख यह साबित करते हैं कि सामुदायिक संसाधन पहले से दर्ज और मान्यता प्राप्त थे इन पर समुदाय का पारंपरिक अधिकार था ।

पटवारी मानचित्र और वनखण्ड से जुड़ी मुख्य बातें

पटवारी मानचित्र में वनखण्ड की सीमा

- 2 अप्रैल 1971 के पत्र के आधार पर वन विभाग ने कुछ जमीनों को वनखण्ड के रूप में चिन्हित किया।
- इन वनखण्डों की सीमा रेखा और मुनारे पटवारी मानचित्र में दर्ज किए गए।
- वन विभाग ने पहले पेंसिल और बाद में लाल स्याही से सीमा दर्ज करने के निर्देश दिए थे।
- लेकिन राजस्व विभाग ने इन्हें काली स्याही से दर्ज किया, जो सामान्य नियमों के विपरीत था।

अन्य अभिलेखों में जानकारी का अभाव

- पटवारी मानचित्र में तो वनखण्ड की सीमा दर्ज की गई, लेकिन जिन जमीनों को इसमें शामिल किया गया, उनका विवरण: खसरा पंजी में दर्ज नहीं किया गया खासकर खसरा पंजी के कॉलम 12 में कोई प्रविष्टि नहीं की गई।

जमीन का रिकॉर्ड से गायब होना

- कुछ जिलों में वन विभाग ने 1927 के वन कानून (धारा 4, 29, 34A) के तहत कई जमीनों को वन भूमि घोषित किया इसके बाद निजी (खाता) और सामुदायिक (गैर-खाता) दोनों प्रकार की जमीन खसरा पंजी और पटवारी मानचित्र से हटा दी गई या अलग कर दी गई

फसल गिरदावरी क्या होती है?

- हर साल अक्टूबर–नवंबर में पटवारी हर खेत (खसरा नंबर) पर जाकर बोई गई फसल या खाली जमीन का रिकॉर्ड दर्ज करता है अगर जमीन पर कोई बदलाव होता है, तो उसे भी: खसरा पंजी के कॉलम 12 में दर्ज किया जाता है.
- वन विभाग से जुड़ी जानकारी दर्ज नहीं की गई
- वास्तविक स्थिति में कई जगह वन विभाग ने जमीन पर कब्जा किया निर्माण, वृक्षारोपण आदि भी किया लेकिन: इन सभी बातों को खसरा पंजी में दर्ज नहीं किया गया न ही इनका कोई आधिकारिक प्रतिवेदन तैयार किया गया

निगरानी व्यवस्था

- फसल गिरदावरी की निगरानी कई अधिकारी करते हैं इनमें राजस्व निरीक्षक, नायब तहसीलदार तहसीलदार, एसडीएम (अनुविभागीय अधिकारी) शामिल हैं इसके बावजूद सही रिकॉर्डिंग सुनिश्चित नहीं हो पाई।

मुख्य समस्या और निष्कर्ष

- राजस्व विभाग अपने ही नियमों का सही पालन नहीं कर पाया जमीन के रिकॉर्ड को सुरक्षित और अपडेट रखने में असफल रहा फसल गिरदावरी जैसी महत्वपूर्ण प्रक्रिया का सही उपयोग नहीं किया गया इससे जमीन के असली अधिकार और स्थिति स्पष्ट नहीं हो पाई।

इस भाग की मुख्य सीख

- पटवारी मानचित्र और खसरा पंजी बहुत महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं।
- कॉलम 12 में बदलाव दर्ज होना जरूरी है।
- रिकॉर्ड में दर्ज न होने से अधिकार कमजोर हो जाते हैं।
- सही और पारदर्शी रिकॉर्डिंग से ही समुदाय अपने अधिकार साबित कर सकता है।

पारंपरिक व्यवस्था और बदलाव की शुरुआत

भारत में पहले ग्रामीण समुदाय अपने सामुदायिक संसाधनों—जैसे जंगल, चरागाह, पानी और निस्तारी भूमि—का उपयोग और प्रबंधन स्वयं करते थे। यह व्यवस्था स्थानीय जरूरतों और परंपराओं पर आधारित थी।

आजादी के बाद (1950 के बाद) सरकार ने भूमि सुधार और समानता के उद्देश्य से कई कानून बनाए। इनका मकसद था:

- **जमींदारी प्रथा समाप्त करना**
- **भूमिहीनों को जमीन देना**
- **सामुदायिक संसाधनों की रक्षा करना**

1950 के बाद मुख्य बदलाव

- 1950: संविधान लागू हुआ, जिसमें आदिवासी क्षेत्रों के लिए 5वीं अनुसूची बनाई गई।
- 1951: भूमि सुधार कानूनों को 9वीं अनुसूची में डालकर न्यायालयी हस्तक्षेप से बचाया गया।
- 1954–1970: मध्यप्रदेश में कई कानून बने (भू-राजस्व संहिता, पड़त भूमि कानून, दखल रहित भूमि कानून), जिनका उद्देश्य था:
    - सरकारी (दखल रहित) जमीन का भूमिहीनों में वितरण
    - सामुदायिक उपयोग (निस्तारी) को सुरक्षित रखना
- 1956 के बाद: ग्रामसभा को सामुदायिक संसाधनों के प्रबंधन का अधिकार देने की सोच विकसित हुई

लेकिन इसी समय एक महत्वपूर्ण समस्या शुरू हुई राजस्व विभाग और वन विभाग ने समानांतर कार्यवाही करते हुए:

- सामुदायिक और निस्तारी भूमि को भारतीय वन अधिनियम 1927 की धाराओं (धारा 4, 20, 29 आदि) के तहत वन भूमि घोषित करना शुरू कर दिया इससे धीरे-धीरे समुदायों का इन संसाधनों पर नियंत्रण कमजोर होता गया।

1990 के बाद के महत्वपूर्ण कानूनी कदम

- 1993: संविधान में 11वीं अनुसूची जोड़कर पंचायतों को 29 विषयों पर अधिकार दिए गए (जिसमें संसाधन प्रबंधन भी शामिल है)।
- 1996 (PESA कानून): अनुसूचित क्षेत्रों में ग्रामसभा को प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार दिए गए।
- 1996 (सुप्रीम कोर्ट – गोदावर्मन केस): कई प्रकार की भूमि को "वन" की परिभाषा में शामिल किया गया, जिससे सामुदायिक भूमि भी वन की श्रेणी में आने लगी।
- 2003: अदालत ने कुछ शर्तों के आधार पर छोटी जमीनों को वन श्रेणी से बाहर किया।
- 2006 (वन अधिकार कानून)
    - "ऐतिहासिक अन्याय" को स्वीकार किया गया व्यक्तिगत और सामुदायिक वन अधिकारों को मान्यता दी गई
- 2008: इसके नियम लागू हुए
- 2011: सुप्रीम कोर्ट ने माना कि निस्तारी और सार्वजनिक भूमि पर पंचायत/ग्रामसभा का अधिकार है

इसके बावजूद समस्या कहां बनी रही?

- कई जगह प्रशासन (कलेक्टर, एसडीएम) ने:
    - राजस्व कानूनों के बजाय वन कानूनों को प्राथमिकता दी

- सामुदायिक भूमि को वन भूमि घोषित करने की प्रक्रिया जारी रखी

- इससे:
  - ग्रामसभा के अधिकार कमजोर हुए
  - भूमिहीनों और समुदायों को उनका हक नहीं मिल पाया

वर्तमान स्थिति की समझ

- कानूनों में स्पष्ट रूप से ग्रामसभा और समुदाय को अधिकार दिए गए हैं...

लेकिन जमीन पर...

- विभागों के बीच टकराव होते रहा
- पुराने रिकॉर्ड और नई व्याख्याओं का भ्रम बना रहा
- प्रशासनिक उदासीनता इनके कारण अधिकार पूरी तरह लागू नहीं हो पाए

इस भाग के मुख्य संदेश

- सामुदायिक संसाधन केवल जमीन नहीं, बल्कि आजीविका और संस्कृति का आधार हैं।
- कानून (PESA, FRA, पंचायत व्यवस्था) समुदाय के पक्ष में हैं।
- "ऐतिहासिक अन्याय" को समझना जरूरी है ताकि अधिकारों की बहाली हो सके।
- ग्रामसभा की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है।
- सही जानकारी और कानूनी समझ से समुदाय अपने अधिकार प्राप्त कर सकता है।

5वीं अनुसूची, राज्यपाल की भूमिका और सामुदायिक अधिकार

5वीं अनुसूची क्या है और क्यों महत्वपूर्ण है?

भारतीय संविधान की 5वीं अनुसूची उन क्षेत्रों के लिए बनाई गई है जहां बड़ी संख्या में आदिवासी समुदाय रहते हैं (अनुसूचित क्षेत्र)। इसका मुख्य उद्देश्य है:

- आदिवासी समुदाय के भूमि और संसाधनों की रक्षा करना
- उनके पारंपरिक अधिकारों को सुरक्षित रखना
- बाहरी हस्तक्षेप से उनकी जमीन बचाना

5वीं अनुसूची के तहत राज्यपाल को विशेष अधिकार दिए गए हैं, ताकि वे आदिवासी हितों की रक्षा कर सकें।

राज्यपाल की भूमिका

5वीं अनुसूची के अनुसार राज्यपाल को दो महत्वपूर्ण अधिकार दिए गए हैं:

- भूमि के हस्तांतरण को रोकना या नियंत्रित करना
  यानी आदिवासियों की जमीन किसी गैर-आदिवासी को आसानी से न दी जाए।
- आदिवासियों को भूमि का आवंटन सुनिश्चित करना
  यानी जरूरतमंद आदिवासी परिवारों को जमीन मिल सके
  इसका मतलब है कि राज्यपाल की जिम्मेदारी है:
- आदिवासियों की जमीन की सुरक्षा करना
- उनके अधिकारों को लागू करवाना
- गलत तरीके से जमीन छिनने से रोकना

जमीन सुधार और वास्तविक स्थिति

आजादी के बाद सरकार ने जमींदारी खत्म की, जमीन सरकार के पास अर्जित की, इसे भूमिहीनों और गरीबों में बांटने का प्रावधान किया।

इन जमीनों का उपयोग भूमिहीनों को बसाने में, सामुदायिक जरूरतों (चरागाह, पानी, निस्तारी) के लिए ग्रामसभा के नियंत्रण में देने के लिए होना था, पर वास्तविकता में यह प्रक्रिया ज़्यादातर कागजों तक सीमित रही और समुदायों को उनका पूरा अधिकार नहीं मिल पाया।

वन विभाग की कार्यवाही और समस्या

1950 के बाद कई जगहों पर सामुदायिक और राजस्व भूमि को भारतीय वन अधिनियम 1927के तहत वन भूमि घोषित किया गया इसमें आदिवासियों की निजी जमीन भी शामिल कर ली गई लेकिन लोगों को उनकी जमीन से बेदखल किया गया वन विभाग ने उन जमीनों पर कब्जा कर लिया लोगों पर वन अपराध तक दर्ज किए गए इससे आदिवासी समुदाय अपने ही संसाधनों से वंचित हो गए।

राज्यपाल की भूमिका पर सवाल

5वीं अनुसूची के अनुसार राज्यपाल को इन कार्यवाहियों को रोकना चाहिए था। आदिवासियों के अधिकारों की रक्षा करनी चाहिए थी। लेकिन ज़मीन पर ऐसा प्रभावी हस्तक्षेप नहीं हुआ, कई मामलों में अन्याय जारी रहा।

भारतीय वन अधिनियम 1927 के प्रावधान

- **धारा 3** - वनों को आरक्षित करने की शक्ति
- **धारा 4** - राज्य सरकार द्वारा अधिसूचना
- **धारा 5**- अधिकारों को प्रोद्भूत होने का वर्जन
- **धारा 6**- वन व्यवस्थापन अधिकारी द्वारा उद्घोषणा
- **धारा 7**- वन व्यवस्थापन अधिकारी द्वारा जांच
- **धारा 8**- वन व्यवस्थापन अधिकारी की शक्तियां
- **धारा 9**- अधिकारों का निर्वापन
- **धारा 10**- खेती का स्थान बदलने की प्रथा से सम्बन्धित दावों का निराकरण
- **धारा 11**- ऐसी भूमि को अर्जित करने की शक्ति जिस पर अधिकार का दावा किया गया है
- **धारा 12**- चराई या वन उपज पर के दावों के अधिकारों के सम्बन्ध में आदेश
- **धारा 13**- वन व्यवस्थापन अधिकारी द्वारा तैयार किये जाने वाले अभिलेख
- **धारा 14**- अभिलेख (Record), जहाँ वह दावा विचार हेतु ग्रहण करता है
- **धारा 15**- स्वीकृत अधिकारों का प्रयोग

- **धारा 16-** अधिकारों का लघुकरण
- **धारा 17-** धारा 11, धारा 12, धारा 15 एवं धारा 16 के अधीन पारित आदेशों के विरूद्ध अपील
- **धारा 18-** धारा 17 के अधीन अपील
- **धारा 19-** अधिवक्ता
- **धारा 20-** प्रस्तावित वन आरक्षित होने के लिए विचारार्थ प्रस्तावित किया जाना
- **धारा 20(अ)-** वन भूमि या पड़त भूमि आरक्षित वन माने जावेंगे।
- **धारा 21-** ऐसी अधिसूचना के अनुवाद का वन के आसपास ग्रामों में प्रकाशन
- **धारा 22-** धारा 15 या 18 के अधीन किये गये प्रबन्ध का पुनरीक्षण करने की शक्ति
- **धारा 23-** आरक्षित वन में कोई अधिकार इसमें उपबंधित रीति के अनुसार अर्जित होने के सिवाय होगा
- **धारा 24-** बिना स्वीकृति, अधिकारों का (हस्तानान्तरण) अन्य संक्रामण नहीं किया जावेगा
- **धारा 25-** आरक्षित वनों में के पथों एवं जल मार्गो को रोकने (बन्द करने) की शक्ति
- **धारा 26-** ऐसे वनों में प्रतिषिद्ध कार्य
- **धारा 27-** यह घोषित करने की शक्ति कि वन, आरक्षित वन, नहीं रहा है
- **धारा 28-** ग्राम वनों का निर्माण (प्ररूपण)
- **धारा 29-** संरक्षित वन
- **धारा 30-** वृक्ष आदि को आरक्षित करने की अधिसूचना जारी करने की शक्ति
- **धारा 31-** ऐसी अधिसूचना के अनुवाद का आसपास में प्रकाश

भू-राजस्व संहिता 1959 के प्रावधान

- 1956 में मध्य प्रदेश का पुर्नगठन हुआ, विन्ध्य प्रान्त, मध्य प्रान्त, भोपाल प्रान्त मध्य प्रदेश में शामिल किए गए, मध्य प्रदेश से विदर्भ को पृथक किया गया। छत्तीसगढ़ के रूप में वर्ष 2000 में मध्य प्रदेश को विभाजित किया।
- 15 सितम्बर 1959 को महामहीम राष्ट्रपति महोदय की अनुमति प्राप्त हुई एवं दिनांक 21 सितम्बर 1959 को राजपत्र में अधिसूचना प्रकाशित हुई।
- संहिता की धारा 2(व) में दखल रहित भूमि को परिभाषित किया जाकर बताया है कि "दखल रहित भूमि से तात्पर्य गांव के अन्तर्गत ऐसी भूमि से है जो आबादी की भूमि या सेवा भूमि या किसी भूस्वामी काश्तकार (कृषक) या शासकीय पट्टाधारी द्वारा धारित भूमि न हो।
- अध्याय 18 दखल रहित भूमि में अधिकार और उसकी उपज
- धारा 233 दखल रहित भूमि का अभिलेख
- नियम- राजपत्र दिनांक 22 जनवरी 1960 में प्रकाशित अधिसूचना
- धारा 234 निस्तार पत्रक का तैयार किया जाना
- नियम- राजपत्र दिनांक 22 जनवरी 1960 में प्रकाशित अधिसूचना
- धारा 235 विषय जिनका निस्तार पत्रक में उपबन्ध किया जावेगा
- धारा 236 कतिपय विषयों के लिए निस्तार पत्रक में उपबन्ध
- धारा 237 निस्तार अधिकारों के उपयोग के लिए भूमि का

पृथक रखा जाना।

- धारा 238 दूसरे गांव की बंजर भूमि के अधिकार
- धारा 239 दखल रहित भूमि में लगाए गए फलदार वृक्षों के अधिकार
- नियम- राजपत्र दिनांक 22 जनवरी 1960 के प्रकाशित अधिसूचना
- धारा 240 कतिपय वृक्षों की कटाई का प्रतिपेध
- नियम- राजपत्र दिनांक 22 जनवरी 1960 के प्रकाशित अधिसूचना
- धारा 241 शासकीय वनों से इमारती लकड़ी की चोरी रोकने के उपाय
- नियम- राजपत्र दिनांक 22 जनवरी 1960 में प्रकाशित अधिसूचना
- धारा 242 रूढि पत्रक (बाजिबुल अर्ज)
- नियम- राजपत्र दिनांक 22 जनवरी 1960 में प्रकाशित अधिसूचना
- धारा 247 खनिज पदार्थों के संबंध में शासन का हक
- धारा 248 अप्राधिकृत रूप से भूमि पर कब्जा कर लेने के लिए शास्ति
- नियम- राजपत्र दिनांक 21 जनवरी 1977 में प्रकाशित अधिसूचना
- धारा 249 मछली पकड़ने, शिकार खेलने आदि का विनियमन
- नियम- राजपत्र दिनांक 22 जनवरी 1960 में प्रकाशित अधिसूचना
- धारा 250 अनुचित रीति से बेकब्जा किए गए भूस्वामी का पुर्नस्थापन
- धारा 250 क कब्जा वापस न दिया जाने पर सिविल कारागार में प्रतिरोध
- नियम- राजपत्र दिनांक 18 सितम्बर 1981 में प्रकाशित अधिसूचना
- धारा 251 तालाब का राज्य शासन में विहित होना
- नियम- उपधारा 1 एवं 2 के म.प्र. राजपत्र दि. 22/01/1960 में अधिसूचना
- नियम- उपधारा 6 के राजपत्र दि 22 जनवरी 1960 में प्रकाशित अधिसूचना
- धारा 252 सार्वजनिक उपयोगिता के कार्यों का संधारण
- नियम- राजपत्र दिनांक 22 जनवरी 1960 में प्रकाशित अधिसूचना
- धारा 253 उपबन्ध के उल्लंघन के लिए दण्ड
- धारा 254 ग्रामसभा के कर्तव्यों का पटेल द्वारा पालन

समाज के अधिकार एवं प्रचलित प्रावधान

समाज के अधिकार को दो हिस्सों में देखा गया है। पहला तो वन विभाग द्वारा नियंत्रित आर.एफ. पर समाज के अधिकार, दूसरा राजस्व ग्रामों की भूमि पर समाज के अधिकार।

राजस्व ग्रामों की राजस्व अभिलेख एवं पटवारी मानचित्र में दर्ज भूमि को ही 1950 से संरक्षित वन अधिसूचित किया गया। 1996 से इन्हीं जमीनों को नारंगी भूमि सर्वे में शामिल किया गया। 1996 में सर्वोच्च अदालत ने इन्हीं जमीनों को वन भूमि आदेशित किया।

संविधान एवं कानून में समाज के अधिकार

म.प्र. भू-राजस्व संहिता 1959 का अध्याय 18, संविधान में लिए संशोधन एवं स्थापित वी अनुसूची, पंचायत (उपबंध) अधिनियम 1996 यानी पेसा कानून, वन अधिकार कानून 2006—इन समस्त प्रावधानों के अनुसार पटवारी मानचित्र, मिसल बन्दोबस्त, बा जिबुल अर्ज, गांव कायदा, निस्तार पत्रक, अधिकार अभिलेख, कासरा पंजी में दर्ज संसाधनों पर ग्रामसभा, ग्राम पंचायत का अधिकार, नियंत्रण एवं प्रबंधन होना चाहिए। समाज के दर्ज एवं प्रचलित अधिकार मान्य होंगे।

ग्रामों के प्रकार

राजस्व और वन कानून के अंतर्गत देश में अलग—अलग तरह के ग्राम प्रचलन में हैं। यहां पर समझने के नजरिए से संक्षिप्त में ग्रामों के प्रकार दिए जा रहे हैं।

मालगुजारी, जमींदारी, जागीरदारी ग्राम:

आजादी के पहले राजस्व ग्रमों की व्यवस्था मालगुजार, जमींदार, जागीरदार के नियंत्रण में थी। इन ग्रामों में निजी भूमि छोड़कर जल जंगल और जमीनी राजागीरदारों के नियंत्रण में थे जिन पर ग्रामीणों को अधिकार प्राप्त थे।

संविधान लागू होने के बाद जमींदारी उन्मूलन कानून या जमींदारी विनाश कानून या 1950 में बनाए जाकर निजी भूमि छोड़कर शेष जंगल और जमीन राज्य सरकार के राजस्व विभाग ने अर्जित किए।

रैयतवारी एवं मसाहती ग्राम:

रैय्यतवारी ग्रामों की भूमि संबंधी पूरे अभिलेख राजस्व विभाग के पास होते थे, इन ग्रामों की व्यवस्था सरकार द्वारा नियुक्त ग्राम पटेल के द्वारा की जाती थी। मसाहती ग्रामों की व्यवस्था समुदाय आधारित थी इन ग्रामों का पूर्ण बन्दोबस्त नहीं किया गया।

राजस्व वन ग्राम -

वन विभाग ने बहुत से राजस्व ग्रामों को वानिकी प्रबन्धन के उद्‌देश्य से राजस्व विभाग से प्राप्त इन ग्रामों की भूमि को वन विभाग ने भी राजस्व भूमि ही माना। इन ग्रामों के राजस्व अभिलेख राजस्व विभाग के राशनी के पास ही संधारित किए जाते रहे इन ग्रामों का राजस्व विभाग बन्दोबस्त भी करते रहा। इस तरह के ग्रामों के 1980 के बाद वन विभाग ने राजस्व वनग्राम माने जाने की बजाय वनग्राम बता दिया और अब इस तरह के इनों की निजी कृषि भूमि को भी वन विभाग वन भूमि बताने लगा।

वनग्राम -

दो तरह के वनग्रामों के प्रमाण उपलब्ध हैं पहले यह ग्राम जो वनभूमि घोषित करने के पूर्व राजस्व ग्राम थे जिन्हें वनखण्ड में आने के कारण वन विभाग ने वन ग्राम मान लिया दूसरे वह ग्राम जिन्हें वन विभाग ने श्रमिक बस्तियों के रूप में बसाया।

नगरीय सीमा में शामिल ग्राम -

नगरों के विकास के साथ ही राजस्व ग्राम एवं वनग्रामों को नगरीय सीमा का हिस्सा बना दिया इससे निजी भूमि पर किसानों के अधिकार तो यथावत बने रहे लेकिन उन्हें ग्रामीण क्षेत्रों के सामान मिलने वाली सुविधाएं मिलना बंद हो गई।

अधिसूचित क्षेत्र में शामिल ग्राम:

किया म.प्र. एवं छत्तीसगढ़ राज्य में विकास खण्ड अधिसूचित किए गए जिसमें शामिल सभी अधिसूचित क्षेत्र में शामिल ग्राम माना गया।

डीनोटीफाइड ग्राम -

वन विभाग ने भारतीय वन अधिनियम 1927 की धारा 34अ के तहत राजस्व अधिसूचना का प्रकाशन कर ग्राम की समस्त संरक्षित वन भूमि डीनोटीफाइड की इन ग्रामों के पटवारी हल्का नहर एवं बन्दोबस्त नंबर का राजपत्र में उल्लेख किया गया। ऐसे ग्रामों में से जिन ग्रामों की जमीनों को संरक्षित वन भूमि मानकर सर्वे डिमारकेशन में वन विभाग ने शामिल किया है। उन ग्रामों के खसरा नम्बर एवं रकबे की जानकारी सर्वे डिमारकेशन रिपोर्ट में वन विभाग के पास उपलब्ध है।

पुनर्वास ग्राम -

भारत सरकार द्वारा भारतीय मूल के पश्चिम पाकिस्तान, बर्मा आदि देशों से आए भारतीयों हां बसाए जाने के लिए पुनर्वास ग्राम बसाए गए जिनका बन्दोबस्त किया जाकर पटवारी मानचित्र, खसरा पंजी, निस्तार पत्रक, किस्तबन्दी, आदि बनाकर ऐसे ग्रामों को बाद में राजस्व ग्राम घोषित किया गया।

मध्य प्रदेश के 1956 में पुर्नगठन के पहले और बाद की स्थिति

समाज का प्राकृतिक संसाधनों (भूमि, जंगल, जल) पर परंपरागत अधिकार हमेशा से रहा है। इन अधिकारों को अलग-अलग समय में नियंत्रित, सीमित और कर-आधारित किया गया। शासन ने इन अधिकारों को अभिलेखों, कानूनों और आदेशों के माध्यम से मान्यता भी दी और सीमित भी किया। इस मॉड्यूल में अंदर जाने से पहले यह समझना आवश्यक है कि प्रदेश में कब कब क्या हुआ?

1950 से पहले और बाद की स्थिति

- 1950 से पहले समाज के पास संसाधनों पर अधिकार थे, लेकिन वे सीमित और नियंत्रित थे।
- **ब्रिटिश काल में:**
    - **1877:** मालगुजारी अधिनियम – ग्राम संसाधनों पर समाज के अधिकारों की मान्यता
    - **1884:** सुखाधिकार कानून – अधिकारों को नियंत्रित किया गया
- 1950 के बाद: भूमि सुधार के नाम पर बड़े बदलाव शुरू हुए।

मध्य प्रदेश का ऐतिहासिक पुनर्गठन (1948–2000)

- **1948:** रियासतों के विलय से भोपाल, मध्य प्रांत और विंध्य प्रदेश बने।
- **1956:** विदर्भ अलग हुआ और मध्य प्रदेश का पुनर्गठन हुआ।
- **2000:** छत्तीसगढ़ राज्य का गठन हुआ।

इन पुनर्गठनों के दौरान भूमि और संसाधनों के अभिलेखों में बड़े बदलाव हुए।

1950 की दो समानांतर व्यवस्थाएं

1950 में दो अलग-अलग व्यवस्थाएं बनीं—

1. राजस्व विभाग की व्यवस्था

- राजस्व ग्रामों की भूमि और सार्वजनिक संसाधनों पर नियंत्रण
- गैर-खाता भूमि (सार्वजनिक/निस्तारी भूमि) का अभिलेखन

2. वन विभाग की व्यवस्था

- आरक्षित वन और समकक्ष क्षेत्रों पर नियंत्रण
- बाद में इन्हीं भूमियों को संरक्षित वन घोषित किया गया

1950 के दो बड़े परिवर्तन

- **पहला:** राजस्व विभाग ने जमींदारों, मालगुजारों से ग्रामों की सार्वजनिक भूमि अर्जित की।
- **दूसरा:** वन विभाग ने इन्हीं संसाधनों को अपने प्रबंधन में लेकर भारतीय वन अधिनियम, 1927 की धारा 29, 4, 20, 34(A) के तहत अधिसूचित कर दिया।
- यहीं से एक ही भूमि पर दो विभागों का दावा शुरू हुआ।

समानांतर व्यवस्था की असफलता

- 1950 से अब तक किसी भी स्तर पर इस दोहरी व्यवस्था की गंभीर समीक्षा नहीं हुई।
- लोकतांत्रिक व्यवस्था, न्यायपालिका और सामाजिक आंदोलनों ने भी इस पर सवाल नहीं उठाया।

- भूमि सुधार आंदोलनों और संगठनों की भूमिका भी निष्क्रिय रही।

समानांतर कार्यवाही का इतिहास (1950–2024)

- राजस्व विभाग: भूमि को राजस्व भूमि मानकर कार्यवाही करता रहा।
- वन विभाग: उसी भूमि को संरक्षित वन मानकर कार्यवाही करता रहा।
- 1996 से सुप्रीम कोर्ट कई मामलों में इन्हें राजस्व भूमि मानकर आदेश देता रहा।
- 2024 तक तक यह दोहरी व्यवस्था जारी है।

समानांतर व्यवस्था का विस्तार

- 1956 में मध्य प्रदेश का क्षेत्रफल: 4.42 करोड़ हेक्टेयर
- राजस्व ग्रामों की गैर-खाता भूमि यानी सार्वजनिक, निस्तारी प्रयोजन की भूमि। : 1.53 करोड़ हेक्टेयर
- इनमें से 1 करोड़ हेक्टेयर से अधिक भूमि पर वन विभाग ने नियंत्रण कर लिया।

असाधारण और हास्यास्पद स्थिति

- राजस्व अभिलेख: भूमि को गैर-खाता, दखल रहित दर्ज करते रहे।
- वन विभाग: उसी भूमि को वन अधिसूचित करता रहा।
- **नतीजा:**
  - समानांतर कानून
  - समानांतर अभिलेख
  - समानांतर आंकड़े

संवैधानिक और कानूनी विफलताएं

- 1950 के कानूनों को अदालत में चुनौती दी गई।
- 1951 में पहला संविधान संशोधन हुआ।
- कानूनों को 9वीं अनुसूची में डाला गया।
- लोकतांत्रिक सहमति से समानांतर व्यवस्था चलती रही।

आंदोलनों और संस्थाओं की भूमिका

- भूमि सुधार आंदोलनों ने विरोध नहीं किया।
- भूदान और वामपंथी आंदोलनों ने भी सवाल नहीं उठाया।
- समाज की भूमि धीरे-धीरे प्रशासनिक नियंत्रण में चली गई।

आज की स्थिति (निष्कर्ष)

- मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ का लगभग एक चौथाई क्षेत्र विवादित है।
- 1950 से 2024 तक: ● समानांतर कानून ● समानांतर अभिलेख ● समानांतर प्रशासनिक कार्यवाही ● लगभग सभी राजस्व ग्राम प्रभावित हैं।

भारत में वनों पर समुदाय की ऐतिहासिक निर्भरता

सह-अस्तित्व, आजीविका और संरक्षण की परंपरा

भारत का सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास वनों के बिना अधूरा है। यहां जंगल केवल प्राकृतिक संसाधन नहीं रहे, बल्कि जीवन, आजीविका, संस्कृति और पहचान का आधार रहे हैं। विशेषकर आदिवासी, वनवासी और ग्रामीण समुदायों की जीवन-पद्धति सदियों से वनों के साथ सह-अस्तित्व पर आधारित रही है।

प्राचीन काल: वन और समाज का रिश्ता

वैदिक, पुराणिक और महाकाव्य काल में वनों को जीवनदायी माना गया। आरण्यक, उपनिषद, रामायण और महाभारत में वन केवल तपस्या या निर्वासन के स्थल नहीं, बल्कि ज्ञान, संरक्षण और सामुदायिक जीवन के केंद्र के रूप में वर्णित हैं।

आदिम और जनजातीय समाजों में शिकार-संग्रह, झूम खेती, वनोपज पर आधारित आजीविका तथा सामुदायिक स्वामित्व की परंपरा विकसित हुई। वनों से प्राप्त खाद्य, औषधि, ईंधन, चारा, रेशा और निर्माण सामग्री जीवन की बुनियादी ज़रूरतें पूरी करती थीं।

मध्यकाल: स्थानीय शासन और सामुदायिक प्रबंधन

मध्यकाल में भी वनों का उपयोग सामुदायिक नियंत्रण और परंपरागत नियमों के तहत होता रहा। ग्राम सभाएं, जातीय परिषदें और स्थानीय मुखिया वनों के संरक्षण और उपयोग के नियम तय करते थे। कई क्षेत्रों में देववन, पवित्र उपवन और आरक्षित चरागाह बनाए गए, जहाँ संसाधनों का उपयोग सीमित और संतुलित रखा जाता था। यह व्यवस्था पर्यावरणीय संतुलन और सामाजिक न्याय दोनों को साधती थी।

औपनिवेशिक काल:

ब्रिटिश शासन ने वनों को राजस्व और औद्योगिक संसाधन के रूप में देखा। 1865, 1878 और 1927 के वन कानूनों के ज़रिये वनों का राज्यकरण किया गया। इससे समुदायों के परंपरागत अधिकार छिन गए और उन्हें अपने ही जंगलों में 'अवैध' बना दिया गया।

लकड़ी, रेलवे स्लीपर और वाणिज्यिक खेती के लिए वनों के दोहन ने न केवल पर्यावरणीय संकट पैदा किया, बल्कि समुदायों की आजीविका, संस्कृति और स्वशासन को भी गहरा आघात पहुँचाया। इसी दौर में कई वन आंदोलन और जनविद्रोह सामने आए, जो समुदायों के अधिकारों की आवाज़ बने।

स्वतंत्रता के बाद: विकास बनाम अधिकार

स्वतंत्र भारत में भी प्रारंभिक दशकों तक वनों पर राज्य का नियंत्रण बना रहा। बड़े बांध, खनन, औद्योगीकरण और संरक्षित क्षेत्रों की स्थापना के नाम पर लाखों वनवासी विस्थापित हुए। हालांकि 1988 की राष्ट्रीय वन नीति और संयुक्त वन प्रबंधन (JFM) जैसी पहलों ने समुदाय की भूमिका को आंशिक रूप से स्वीकार किया, लेकिन अधिकारों की मान्यता अब भी अधूरी रही। (1950 के बाद समानांतर कार्यवाहियों का इतिहास)

वनाधिकार अधिनियम, 2006: ऐतिहासिक सुधार

वनों पर समुदाय की ऐतिहासिक निर्भरता को कानूनी मान्यता वनाधिकार अधिनियम, 2006 (FRA) के माध्यम से मिली। इस

कानून ने स्वीकार किया कि आदिवासी और अन्य परंपरागत वनवासी सदियों से वनों की रक्षा और प्रबंधन करते आए हैं। सामुदायिक वनाधिकार (CFR) ने ग्राम सभा को वनों के संरक्षण, प्रबंधन और उपयोग का अधिकार देकर उस ऐतिहासिक रिश्ते को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया, जो औपनिवेशिक काल में टूट गया था।

आज का संदर्भ: भविष्य की दिशा

आज, जब जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता क्षरण और आजीविका संकट गहराता जा रहा है, तब यह स्पष्ट हो रहा है कि वनों का भविष्य समुदायों के बिना सुरक्षित नहीं है। ऐतिहासिक अनुभव बताते हैं कि जहां समुदाय सशक्त हैं, वहां वन अधिक सुरक्षित, उत्पादक और टिकाऊ हैं।

निष्कर्ष

भारत में वनों पर समुदाय की ऐतिहासिक निर्भरता केवल अतीत की कहानी नहीं, बल्कि भविष्य की कुंजी है। यह निर्भरता शोषण नहीं, बल्कि संरक्षण, संतुलन और सह-अस्तित्व की परंपरा रही है। वनों के संरक्षण और न्यायपूर्ण विकास के लिए ज़रूरी है कि इस ऐतिहासिक सच को नीतियों, योजनाओं और व्यवहार में पूरी तरह स्वीकार किया जाए।

वन संरक्षण में समुदाय की महत्वपूर्ण भूमिका

भारत जैसे जैव-विविधता से समृद्ध देश में वनों का संरक्षण केवल सरकारी नीतियों या प्रशासनिक नियंत्रण से संभव नहीं है। सदियों से यह कार्य स्थानीय समुदायों—विशेषकर आदिवासी और वनवासी समाजों—की सक्रिय भागीदारी से ही संभव हुआ है। भारत में वन संरक्षण का इतिहास दरअसल समुदाय और प्रकृति के बीच गहरे, जीवंत और उत्तरदायी रिश्ते का इतिहास है।

परंपरागत ज्ञान और संरक्षण की संस्कृति

मध्यप्रदेश में वनों की रक्षा के लिए समुदाय स्तर पर कई ऐसे व्यवहार और रीति-रिवाज प्रचलित रहे हैं, जो पीढ़ियों से जंगलों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते आए हैं। आदिवासी और वनवासी समुदाय जंगल को केवल संसाधन नहीं, बल्कि जीवन का आधार और सांस्कृतिक पहचान मानते हैं। कई क्षेत्रों में ग्राम देवता, वन देवता या "बड़ादेव", "सागौन देव", "महुआ माता" जैसी मान्यताएं प्रचलित हैं, जिनके कारण कुछ खास जंगलों, पेड़ों या पहाड़ियों को पवित्र मानकर काटना वर्जित होता है।

आजीविका और संरक्षण का अंतर्संबंध

वन समुदायों के लिए केवल संसाधन नहीं, बल्कि आजीविका का आधार हैं। ईंधन, चारा, औषधीय पौधे, लघु वनोपज (NTFP) और जल स्रोत—ये सभी वनों से जुड़े हैं। जब समुदायों की आजीविका सुरक्षित होती है, तो वे वनों के संरक्षण में स्वाभाविक साझेदार बनते हैं। इसके विपरीत, समुदायों को वनों से अलग करने की नीतियां संरक्षण को कमजोर करती हैं।

औपनिवेशिक विरासत और उससे उबरने की आवश्यकता

औपनिवेशिक काल में वनों के केंद्रीकरण और राज्य नियंत्रण ने समुदायों की भूमिका को सीमित कर दिया। इससे वन संरक्षण को नुकसान पहुंचा और समुदाय–राज्य के बीच अविश्वास बढ़ा। स्वतंत्रता के बाद भी यह दृष्टिकोण लंबे समय तक जारी रहा। हालांकि 1988 की राष्ट्रीय वन नीति ने पहली बार यह स्वीकार किया कि वन संरक्षण में स्थानीय समुदायों की भागीदारी अनिवार्य है।

सामुदायिक भागीदारी के आधुनिक प्रयास

संयुक्त वन प्रबंधन (JFM) और बाद में वनाधिकार अधिनियम, 2006 (FRA) ने समुदायों की भूमिका को संस्थागत रूप दिया। विशेषकर सामुदायिक वनाधिकार (CFR) के तहत ग्राम सभा को वनों के संरक्षण, प्रबंधन और पुनर्जीवन का अधिकार मिला। जहां-जहां समुदायों को निर्णय लेने की शक्ति मिली है, वहां वनों की स्थिति बेहतर हुई है—वन आवरण बढ़ा है, आग और अवैध कटाई पर नियंत्रण हुआ है और जैव विविधता सुदृढ़ हुई है।

महिलाएं और युवा: संरक्षण की अग्रिम पंक्ति

वन संरक्षण में महिलाओं की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। जल, ईंधन और भोजन संग्रह की जिम्मेदारी निभाने वाली महिलाएं संसाधनों के सतत उपयोग की व्यवहारिक समझ रखती हैं। कई क्षेत्रों में महिला समूहों ने अवैध कटाई और शिकार को रोकने में नेतृत्व किया है। युवा पीढ़ी डिजिटल उपकरणों, मैपिंग और नवाचार के माध्यम से संरक्षण प्रयासों को नई दिशा दे रही है।

चुनौतियाँ और आगे का रास्ता

हालांकि समुदाय आधारित वन संरक्षण के लाभ स्पष्ट हैं, फिर भी अधिकारों की अधूरी मान्यता, प्रशासनिक बाधाएं और संसाधनों की कमी जैसी चुनौतियां बनी हुई हैं। आवश्यकता है कि नीतियां समुदायों को लाभार्थी नहीं, बल्कि साझेदार के रूप में देखें।

निष्कर्ष

भारत में वन संरक्षण का भविष्य समुदायों की भागीदारी पर निर्भर है। समुदायों को सशक्त करना, उनके अधिकारों को मान्यता देना और उनके ज्ञान को संरक्षण रणनीतियों का केंद्र बनाना ही टिकाऊ और न्यायपूर्ण वन संरक्षण का मार्ग है।

वनों की रक्षा केवल पर्यावरणीय आवश्यकता नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक शासन की भी अनिवार्यता है।

वनाधिकार अधिनियम, 2006

ऐतिहासिक अन्याय के सुधार की दिशा में एक मील का पत्थर

भारत के वन क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासी और अन्य परंपरागत वनवासी समुदाय सदियों से वनों की रक्षा, प्रबंधन और सतत उपयोग करते आए हैं। बावजूद इसके, औपनिवेशिक वन कानूनों और स्वतंत्रता के बाद की नीतियों ने इन्हें अपने ही जंगलों में अतिक्रमणकारी बना दिया। वनाधिकार अधिनियम, 2006 इसी ऐतिहासिक अन्याय को सुधारने के उद्देश्य से अस्तित्व में आया।

अधिनियम की पृष्ठभूमि

ब्रिटिश काल के वन कानूनों—विशेषकर 1927 के भारतीय वन अधिनियम—ने वनों को राज्य की संपत्ति घोषित कर दिया। इससे समुदायों के पारंपरिक अधिकार समाप्त हो गए। स्वतंत्रता के बाद भी यह दृष्टिकोण काफी हद तक जारी रहा, जिसके परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर विस्थापन, आजीविका संकट और सामाजिक असुरक्षा उत्पन्न हुई।

इन परिस्थितियों ने एक ऐसे कानून की आवश्यकता को जन्म दिया, जो वनवासी समुदायों के अधिकारों को कानूनी मान्यता दे सके।

वनाधिकार अधिनियम के उद्देश्य

वनाधिकार अधिनियम का मुख्य उद्देश्य आदिवासी और अन्य परंपरागत वनवासी समुदायों के व्यक्तिगत और सामुदायिक अधिकारों को मान्यता देना है। साथ ही यह कानून वन संरक्षण को समुदायों की सक्रिय भागीदारी से जोड़ता है। अधिनियम यह स्वीकार करता है कि वनों का संरक्षण केवल प्रशासनिक नियंत्रण से नहीं, बल्कि समुदायों की भागीदारी से ही संभव है।

प्रमुख अधिकारों का स्वरूप

इस अधिनियम के अंतर्गत निम्नलिखित प्रमुख अधिकार मान्य किए गए हैं:

- **व्यक्तिगत वनाधिकार (IFR):** पीढ़ियों से वन भूमि पर निवास और खेती करने वाले परिवारों को भूमि पर अधिकार।
- **सामुदायिक वनाधिकार (CFR):** समुदाय को वनों से लघु वनोपज संग्रह, जैव विविधता का अधिकार, उपयोग और प्रबंधन का अधिकार, वन भूमि के उपयोग, सर्वजिक निसतरी प्रयोजन के अधिकार।
- **सामुदायिक वन संसाधन अधिकार (CFRR):** ग्राम सभा को वनों के संरक्षण, प्रबंधन और पुनर्जीवन का अधिकार।
- **अन्य अधिकार:** चराई, जल स्रोतों का उपयोग, मछली पकड़ना, वन आधारित आजीविका और सांस्कृतिक-धार्मिक स्थलों तक पहुंच।

ग्राम सभा की केंद्रीय भूमिका

वनाधिकार अधिनियम की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता ग्राम सभा को निर्णय का केंद्र बनाना है। दावा प्रस्तुत करने, सत्यापन करने और वन संसाधनों के प्रबंधन की जिम्मेदारी ग्राम सभा को सौंपी गई है। यह अधिनियम स्थानीय स्वशासन और लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण को मजबूत करता है।

वन संरक्षण और वनाधिकार कानून (FRA)

अक्सर यह धारणा बनाई जाती है कि FRA वन संरक्षण के विरुद्ध है, जबकि वास्तविकता इसके विपरीत है। अधिनियम की धारा 5

ग्राम सभा को यह अधिकार देती है कि वह वन्यजीव, वन और जैव विविधता की रक्षा के लिए नियम बनाए और बाहरी हस्तक्षेप को नियंत्रित करे।

जहां-जहां सामुदायिक वनाधिकार लागू हुए हैं, वहां वनों की स्थिति में सुधार देखा गया है।

कार्यान्वयन की चुनौतियां

हालांकि वनाधिकार अधिनियम, 2006 एक प्रगतिशील कानून है, लेकिन इसके क्रियान्वयन में कई चुनौतियां सामने आई हैं—

- अधिकारों की अधूरी मान्यता
- प्रशासनिक उदासीनता और प्रक्रियागत जटिलताएँ
- समुदायों में कानूनी जागरूकता की कमी
- वन विभाग और समुदायों के बीच समन्वय की कमी
- राजस्व विभाग- भू राजस्व संहिता और प्रशासकीय निष्क्रियता

आगे की राह

वनाधिकार अधिनियम की आत्मा को साकार करने के लिए आवश्यक है कि ग्राम सभाओं को सशक्त किया जाए, सीएसओ और समर्थ संस्थाएं क्षमता निर्माण में सहयोग दें और राज्य सरकारें पारदर्शी व संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाएँ। वन संरक्षण, आजीविका सुरक्षा और सामाजिक न्याय—तीनों लक्ष्यों को एक साथ साधने का मार्ग वनाधिकार कानून प्रदान करता है।

निष्कर्ष

वनाधिकार अधिनियम, 2006 केवल एक कानूनी दस्तावेज़ नहीं, बल्कि भारत के वनवासी समुदायों के सम्मान, अधिकार और भागीदारी की पुनर्स्थापना का प्रयास है। यह कानून वनों के संरक्षण को लोकतांत्रिक और न्यायपूर्ण बनाने की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम है।

(अगले अध्याय में इन बिंदुओं पर विस्तार से जानकारी दी गई है)

वनाधिकार के प्रकार

(वनाधिकार अधिनियम, 2006 के अंतर्गत)

1. व्यक्तिगत वनाधिकार (Individual Forest Rights – IFR)

1.1 व्यक्तिगत वनाधिकार क्या है?

व्यक्तिगत वनाधिकार (IFR) उन आदिवासी और अन्य परंपरागत वनवासी परिवारों को दिया जाता है, जो पीढ़ियों से वन भूमि पर निवास और खेती करते आ रहे हैं। यह अधिकार परिवार विशेष को उसकी खेती योग्य वन भूमि पर कानूनी स्वामित्व और उपयोग का अधिकार प्रदान करता है।

1.2 व्यक्तिगत वनाधिकार का कानूनी आधार

- वनाधिकार अधिनियम, 2006 की **धारा 3(1) (a)**
- **पात्रता:**
  - अनुसूचित जनजाति (ST)
  - अन्य परंपरागत वनवासी (OTFD) – जो कम-से-कम **तीन पीढ़ियों (75 वर्ष)** से वन पर निर्भर हों
  - आदिवासी या गैर आदिवासी का 13 दिसंबर 2005 से पूर्व वन भूमि पर कब्जा

1.3 व्यक्तिगत वनाधिकार के अंतर्गत मिलने वाले अधिकार

- वन भूमि पर कृषि करने का अधिकार
- आवास और आजीविका का अधिकार
- भूमि को बेचा नहीं जा सकता, केवल विरासत में स्थानांतरित किया जा सकता है
- भूमि का उपयोग केवल स्व-उपयोग (self-cultivation) के लिए

1.4 भूमि की सीमा

- अधिकतम **4 हेक्टेयर**
- केवल उतनी ही भूमि जिस पर 13 दिसंबर 2005 से पहले खेती हो रही हो
- किसी किसान के पास उसकी 2 हेक्टेयर निजी जमीन है उस पर 2 हेक्टेयर पर ही दावा कर सकता है, भले ही उसका ज्यादा जमीन पर कब्जा हो।

1.5 व्यक्तिगत वनाधिकार का महत्व

- भूमि सुरक्षा और बेदखली से संरक्षण
- आजीविका की स्थिरता
- सामाजिक सम्मान और पहचान

2. सामुदायिक वनाधिकार (Community Forest Rights – CFR)

2.1 सामुदायिक वनाधिकार क्या है?

सामुदायिक वनाधिकार (CFR) किसी पूरे गांव या समुदाय को वनों के उपयोग और उन पर निर्भर आजीविका से जुड़े अधिकार प्रदान करता है। यह अधिकार व्यक्तिगत नहीं बल्कि सामूहिक होता है।

2.2 सामुदायिक वनाधिकार का कानूनी आधार

- वनाधिकार अधिनियम, 2006 की धारा 3 (1) (c), (d), (e), (f)
- यह अधिकार ग्राम सभा के माध्यम से मान्य होता है
- 2.3 सामुदायिक वनाधिकार के अंतर्गत प्रमुख अधिकार
- लघु वनोपज (NTFP) संग्रह, उपयोग और विक्रय
- चराई, ईंधन लकड़ी और चारा संग्रह
- जल स्रोतों, मछली पालन और अन्य सामुदायिक उपयोग
- सांस्कृतिक और धार्मिक स्थलों तक पहुँच
- सामाजिक एवं धार्मिक रीति रिवाज

2.4 सामुदायिक वनाधिकार का महत्व

- समुदाय की आजीविका में वृद्धि

- स्थानीय संसाधनों पर सामूहिक नियंत्रण
- परंपरागत ज्ञान और प्रथाओं का संरक्षण

3. सामुदायिक वन संसाधन अधिकार (Community Forest Resource Rights – CFRR)

3.1 सामुदायिक वन संसाधन अधिकार क्या है?

सामुदायिक वन संसाधन अधिकार (CFRR) FRA का सबसे सशक्त और परिवर्तनकारी प्रावधान है। इसके तहत ग्राम सभा को अपने परंपरागत वन क्षेत्र के संरक्षण, प्रबंधन और पुनर्जीवन का अधिकार मिलता है।

3.2 सामुदायिक वन संसाधन अधिकार का कानूनी आधार

- वनाधिकार अधिनियम, 2006 की धारा 3(1)(i)
- धारा 5 – ग्राम सभा के संरक्षण संबंधी अधिकार

3.3 सामुदायिक वन संसाधन अधिकार के अंतर्गत ग्राम सभा के अधिकार

- वन संरक्षण और प्रबंधन के नियम बनाना
- अवैध कटाई, अतिक्रमण और बाहरी हस्तक्षेप को रोकना
- वन प्रबंधन योजना (CFMP) तैयार करना
- वन विभाग के साथ समन्वय

3.4 सामुदायिक वन संसाधन अधिकार का महत्व

- लोकतांत्रिक वन शासन
- सतत वन प्रबंधन
- जैव विविधता और जलवायु संरक्षण

3.5 सामुदायिक वन संसाधन अधिकार और वन संरक्षण

सामुदायिक वन संसाधन अधिकार यह स्पष्ट करता है कि समुदाय केवल लाभार्थी नहीं, बल्कि वनों के संरक्षक हैं। जहाँ सामुदायिक वन संसाधन अधिकार लागू हुआ है, वहाँ वनों की स्थिति में सुधार देखा गया है।

निष्कर्ष

वनाधिकार अधिनियम के अंतर्गत व्यक्तिगत वनाधिकार, सामुदायिक वनाधिकार और सामुदायिक वन संसाधन अधिकार— तीनों अधिकार मिलकर भूमि सुरक्षा, आजीविका और वन संरक्षण के बीच संतुलन बनाते हैं। इनमें से सामुदायिक वन संसाधन अधिकार समुदाय को वन शासन के केंद्र में स्थापित करता है और टिकाऊ वन प्रबंधन का मार्ग प्रशस्त करता है।

सामुदायिक वनाधिकार के संदर्भ में ग्राम सभा की भूमिका

सामुदायिक वनाधिकार, वनाधिकार अधिनियम, 2006 (FRA) की आत्मा और संरचना का केंद्र है। यह अधिनियम ग्राम सभा को केवल एक औपचारिक इकाई नहीं, बल्कि वन शासन (Forest Governance) की प्रमुख संस्था के रूप में स्थापित करता है।

सामुदायिक वन अधिकार को मान्यता

वन विभाग द्वारा दर्ज एवं प्रतिवेदित आरक्षित वन भूमि पर समाज के अधिकार रहे हैं। आरक्षित वन यानी पर ग्रामीण समाज के अनेक धार्मिक स्थल हैं। इन धार्मिक स्थलों पर लोग आराधना हेतु जमा होते हैं, यानी मेला आयोजन होता है।

आरक्षित वन से आने-जाने के रास्ते हैं। आरक्षित वन में बहने वाली नदी-नालों, तालाबों आदि में मछली पकड़ने का कार्य ग्रामीण करते हैं। इस तरह के अधिकार के लिए समाज को दावा कर अधिकार प्राप्त करने का प्रावधान है।

आरक्षित वन को छोड़कर पी.एफ. यानी संरक्षित वन, अवर्गीकृत वन, नारंगी वन, सर्वोच्च अदालत द्वारा आदेशित वन—इन सभी के लिए समाज के प्रचलित अधिकार आजादी के पहले की मिसल बन्दोबस्त, बाजिबुल अर्ज तथा आज गांव कायदा में दर्ज रहे हैं।

भू-राजस्व संहिता 1959 की धारा 234 के तहत बनाए गए निस्तार पत्रक, धारा 108 के तहत बनाए गए अधिकार अभिलेख एवं कासरा पंजी में दर्ज हैं। पटवारी मानचित्र में इन संसाधनों का रेखांकन उपलब्ध है।

दावा प्रक्रिया के अनुसार

राजस्व अभिलेखों में दर्ज समाज के अधिकार एवं सार्वजनिक प्रयोजन वर्तमान में भी वैधानिक तौर पर प्रचलित हैं। इन संसाधनों पर ग्रामसभा एवं ग्राम पंचायत को अधिकार, नियंत्रण एवं प्रबंधन संवैधानिक एवं वैधानिक तौर पर होना चाहिए।

वनाधिकार (CFR) में ग्राम सभा की केंद्रीय भूमिका

1. ग्राम सभा : अधिकारों की मूल इकाई

वनाधिकार अधिनियम यह स्पष्ट करता है कि वनाधिकारों की पहचान, दावा और प्रबंधन की शुरुआत ग्राम सभा से होती है। सामुदायिक वनाधिकार के तहत अधिकार किसी व्यक्ति या विभाग को नहीं, बल्कि पूरे समुदाय को—ग्राम सभा के माध्यम से दिए जाते हैं।

इससे वन शासन का केंद्र राज्य से समुदाय की ओर स्थानांतरित होता है।

2. सामुदायिक वनाधिकार दावा प्रक्रिया में ग्राम सभा की भूमिका

ग्राम सभा सामुदायिक वनाधिकार की पूरी प्रक्रिया में निर्णायक भूमिका निभाती है। वह यह तय करती है कि गांव का परंपरागत वन क्षेत्र कौन-सा है? सामुदायिक वनाधिकार का प्रस्ताव पारित करती है। दावे के समर्थन में नक्शे, परंपरागत उपयोग के प्रमाण, सामुदायिक गवाही को प्रमाणित करती है।

3. बड़े छोटे झाड़ के जंगल और धारा 4 में अधिसूचित भूमि से संबंधित प्रमाण

- राजस्व अभिलेखागार के पास आजादी की पूर्व की मिसल बंदोबस्त
- मिसल बंदोबस्त में बाजीबुल अर्ज और गांव कायदा
- भू राजस्व संहिता 1959 की धारा 234 के तहत बनाए निस्तार पत्रक
- धारा 108 के तहत बनाए अधिकार अभिलेख और खसरा पंजी
- उप–विभागीय एवं जिला स्तरीय समितियों को दावा अग्रेषित करती है। महत्वपूर्ण बात यह है कि बिना ग्राम सभा की सहमति कोई सामुदायिक वनाधिकार दावा वैध नहीं माना जा सकता।

4. वन संरक्षण और प्रबंधन में ग्राम सभा की भूमिका

सामुदायिक वनाधिकार केवल संसाधन उपयोग का अधिकार नहीं है, बल्कि संरक्षण और प्रबंधन का अधिकार भी है।

वनाधिकार अधिनियम की धारा 5 ग्राम सभा को यह अधिकार देती है कि वह वन, वन्यजीव और जैव विविधता की रक्षा करे, अवैध कटाई, अतिक्रमण और बाहरी हस्तक्षेप को रोके, स्थानीय नियम और उपनियम बनाए और वन प्रबंधन योजना (Community Forest Management Plan – CFMP) तैयार करे। इस प्रकार ग्राम सभा वनों की संरक्षक संस्था बन जाती है।

5. निर्णय लेने में लोकतांत्रिक भूमिका

सामुदायिक वनाधिकार के तहत ग्राम सभा वन संसाधनों के उपयोग के नियम तय करती है, लघु वनोपज (NTFP) के संग्रह, वितरण और विपणन पर निर्णय लेती है और महिलाओं, युवाओं और कमजोर वर्गों की भागीदारी सुनिश्चित करती है। यह प्रक्रिया लोकतांत्रिक, सहभागितामूलक और पारदर्शी वन शासन को बढ़ावा देती है।

6. वन विभाग के साथ संबंध : टकराव नहीं, समन्वय

वनाधिकार अधिनियम ग्राम सभा और वन विभाग को विरोधी नहीं, बल्कि पूरक मानता है। सामुदायिक वनाधिकार के अंतर्गत ग्राम सभा नेतृत्व में निर्णय होते हैं, वन विभाग तकनीकी सहयोग और मार्गदर्शन प्रदान करता है, जहां यह समन्वय प्रभावी रहा है, वहां वन संरक्षण और आजीविका—दोनों में सकारात्मक परिणाम सामने आए हैं।

7. सामाजिक न्याय और आत्मसम्मान की भूमिका

ग्राम सभा को केंद्रीय भूमिका देने का अर्थ ऐतिहासिक अन्याय की आंशिक भरपाई, समुदाय का आत्मसम्मान और स्वशासन सुदृढ़ होना और आदिवासी और वनवासी समुदायों को लाभार्थी नहीं, बल्कि अधिकारधारी के रूप में मान्यता प्रदान करना है।

सामुदायिक वनाधिकार (सामुदायिक वनाधिकार) में ग्राम सभा केवल एक प्रशासनिक इकाई नहीं, बल्कि अधिकार निर्धारक, वन

संरक्षक, संसाधन प्रबंधक, और लोकतांत्रिक शासन की धुरी है। वनों का संरक्षण, आजीविका की सुरक्षा और सामाजिक न्याय— इन तीनों का संगम तभी संभव है, जब ग्राम सभा को उसकी केंद्रीय भूमिका में पूर्ण रूप से सशक्त किया जाए।

वन सीमा की पहचान

आरक्षित वन सीमा वन विभाग के आर.एफ. मानचित्र में दर्ज होती है। उस सीमा में आने वाली भूमि का रकबा वन विभाग के एरिया रजिस्टर एवं वन के इतिहास में दर्ज होता है।

एरिया रजिस्टर एवं वन के इतिहास में दिए गए प्रारूप में समाज के प्रचलित अधिकारों का ब्यौरा दर्ज करना चाहिए। वन विभाग ने अपने ही अभिलेखों में समाज के अधिकारों का ब्यौरा दर्ज नहीं किया।

आरक्षित वन की सीमा रेखा 1971 में पटवारी मानचित्र में काली स्याही से दर्ज की गई है। आरक्षित वन भूमि को 1980 से 2000 के बीच पटवारी मानचित्र एवं खसरा पंजी से वन भूमि मानकर पृथक कर दिया गया, जो विधि के अनुसार सही नहीं था।

इस स्थिति में ग्राम की सीमा एवं सीमा में शामिल सामुदायिक संसाधनों का आकलन मिसल बन्दोबस्त में उपलब्ध पटवारी मानचित्र एवं 1980-81 के पूर्व प्रचलित अधिकार अभिलेख एवं बासरा पंजी के आधार पर करना आवश्यक है।

साक्ष्य एवं दस्तावेजों का संकलन

आरक्षित वन को छोड़कर शेष वन भूमि से संबंधित समस्त साक्ष्य राजस्व विभाग के आजादी पूर्व बने मिसल बन्दोबस्त, बाजीबुल अर्ज एवं गांव कायदा में अंकित हैं। आजादी के बाद बने निस्तार पत्रक, अधिकार अभिलेख, बासरा पंजी एवं पटवारी मानचित्र में रेखांकन उपलब्ध है।

सामुदायिक वनाधिकार क्या है?

सामुदायिक वनाधिकार (CFR) वह कानूनी अधिकार है, जिसके तहत किसी ग्राम सभा/समुदाय को उसके परंपरागत रूप से उपयोग में रहे वन क्षेत्र पर सामूहिक अधिकार प्राप्त होता है। यह अधिकार मानता है कि समुदाय सदियों से वनों पर निर्भर रहा है और उसने ही वनों का संरक्षण व प्रबंधन किया है।

सामुदायिक वनाधिकार के अंतर्गत समुदाय को वनों के उपयोग का अधिकार, वनों से जुड़े निर्णय लेने का अधिकार, और वनों के संरक्षण एवं प्रबंधन की जिम्मेदारी एक साथ दी जाती है। सामुदायिक वनाधिकार व्यक्तिगत अधिकार नहीं, बल्कि सामूहिक अधिकार है, जिसे ग्राम सभा के माध्यम से लागू किया जाता है।

2. सामुदायिक वनाधिकार के अंतर्गत अधिकार

2.1 जंगल से लघु वनोपज (NTFP) संग्रह का अधिकार

सामुदायिक वनाधिकार के तहत समुदाय को जंगल से मिलने वाली लघु वनोपज पर अधिकार प्राप्त होता है, जैसे तेंदूपत्ता, महुआ, साल बीज, हर्रा, चिरौंजी, शहद, गोंद, लाख, औषधीय पौधे बाँस, पत्ते, फल और कंद। इस अधिकार का अर्थ है कि लघु वनोपज का संग्रह, उपयोग, प्रसंस्करण और विक्रय बिचौलियों की भूमिका में कमी स्थानीय स्तर पर आय और रोजगार के अवसर। यह अधिकार समुदाय की आजीविका सुरक्षा को मजबूत करता है।

2.2 संरक्षण, प्रबंधन और पुनर्जीवन का अधिकार

सामुदायिक वनाधिकार केवल संसाधन उपयोग तक सीमित नहीं है। इसके अंतर्गत समुदाय को अपने वन क्षेत्र के संरक्षण, प्रबंधन, पुनर्जीवन का अधिकार भी प्राप्त है। इसके अंतर्गत ग्राम सभा वन उपयोग के नियम बनाती है, अवैध कटाई, शिकार और आग पर नियंत्रण करती है, वन प्रबंधन योजना तैयार करती है और जल स्रोतों, जैव विविधता और वन्यजीवों की रक्षा करती है। यह अधिकार यह सिद्ध करता है कि समुदाय केवल उपभोक्ता नहीं, बल्कि वनों के संरक्षक हैं।

2.3 बाहरी हस्तक्षेप को नियंत्रित करने का अधिकार

वनाधिकार अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत ग्राम सभा को यह अधिकार प्राप्त है कि वह बाहरी व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा अवैध कटाई और दोहन को रोके, बिना ग्राम सभा की सहमति किसी भी प्रकार की गतिविधि (खनन, व्यावसायिक कटाई आदि) पर आपत्ति दर्ज करे और वन संसाधनों पर अतिक्रमण को रोकने के लिए सामुदायिक निगरानी व्यवस्था बनाए। यह अधिकार ग्राम सभा को वन शासन में निर्णायक भूमिका देता है और समुदाय की स्वायत्तता को मजबूत करता है।

3. सामुदायिक वनाधिकार और वन संरक्षण का संबंध

सामुदायिक वनाधिकार और वन संरक्षण के बीच संबंध पूरक और परस्पर आश्रित है।

3.1 समुदाय आधारित संरक्षण

जहां समुदायों को सामुदायिक वनाधिकार प्राप्त हुआ है, वहां वन आवरण में सुधार हुआ है, जैव विविधता का संरक्षण और अवैध गतिविधियों में कमी देखी गई है। इसका कारण है कि समुदाय अपने वनों को अपनी संपत्ति और जिम्मेदारी मानता है।

3.2 आजीविका और संरक्षण का संतुलन

सामुदायिक वनाधिकार यह सुनिश्चित करता है कि संरक्षण के साथ आजीविका भी सुरक्षित रहे, समुदाय के हित और पर्यावरणीय हित एक-दूसरे के विरोधी न हों।

3.3. मुख्य बातें

- सामुदायिक वनाधिकार समुदाय को अधिकार और जिम्मेदारी दोनों देता है।
- ग्राम सभा सामुदायिक वनाधिकार की केंद्रीय इकाई है।
- सामुदायिक वनाधिकार के बिना टिकाऊ वन संरक्षण संभव नहीं।

निष्कर्ष

सामुदायिक वनाधिकार (CFR) वन संरक्षण की एक ऐसी लोकतांत्रिक व्यवस्था है, जिसमें समुदाय निर्णयकर्ता, संरक्षक और लाभार्थी—तीनों भूमिकाएँ निभाता है। यह न केवल वनों की रक्षा करता है, बल्कि सामाजिक न्याय और आजीविका सुरक्षा को भी सुनिश्चित करता है।

सामुदायिक वनाधिकार दावा प्रक्रिया

यह इकाई प्रशिक्षणार्थियों को सामुदायिक वनाधिकार (CFR) के दावा करने की कानूनी, चरणबद्ध और व्यावहारिक प्रक्रिया समझाने के लिए तैयार की गई है। इसका उद्देश्य ग्राम सभा और सीएसओ कार्यकर्ताओं को दावा दायर करने से लेकर अधिकार पत्र प्राप्त होने तक की पूरी समझ देना है।

6. सामुदायिक वनाधिकार दावा करने की चरणबद्ध प्रक्रिया

चरण 1: ग्राम सभा की तैयारी और निर्णय

- सामुदायिक वनाधिकार दावा की प्रक्रिया ग्राम सभा से प्रारंभ होती है
- ग्राम सभा में सामुदायिक वनाधिकार का प्रस्ताव पारित किया जाता है
- ग्राम सभा वन की परंपरागत सीमा पर चर्चा कर सहमति बनाती है
- एक वन अधिकार समिति (FRC) का गठन या पुष्टि की जाती है

महत्वपूर्ण बिंदु:

- ग्राम सभा सर्वोच्च प्राधिकरण है
- दावा सामूहिक सहमति से किया जाता है

चरण 2: वन सीमा की पहचान और मानचित्रण (Mapping)

- समुदाय अपने परंपरागत वन क्षेत्र की पहचान करता है
- नक्शे में निम्न शामिल होते हैं:
  - o जंगल की सीमा
  - o उपयोग क्षेत्र (लघु वनोपज, चराई, जल स्रोत)
  - o सांस्कृतिक/धार्मिक स्थल
- नक्शा हाथ से बनाया गया या जीपीएस आधारित हो सकता है। हर गांव का नक्शा पटवारी के पास उपलब्ध भी होता है।

चरण 3: साक्ष्य और दस्तावेज़ों का संकलन

सामुदायिक वनाधिकार दावा के लिए यह साबित करना आवश्यक है कि समुदाय का उस वन क्षेत्र से परंपरागत और निरंतर संबंध रहा है।

(क) मौखिक साक्ष्य

- बुजुर्गों के बयान
- पारंपरिक उपयोग की सामूहिक गवाही

(ख) लिखित/दस्तावेज़ी साक्ष्य

- राजस्व या वन रिकॉर्ड
- पुराने नक्शे, सर्वे दस्तावेज़
- पंचायत/ग्राम सभा प्रस्ताव
- सरकारी रिपोर्ट या आदेश

(ग) भौतिक साक्ष्य

- देवस्थान, कब्रिस्तान, पूजा स्थल
- पुराने रास्ते, जल स्रोत
- लघु वनोपज संग्रह के चिन्ह

नोट: अधिनियम के अनुसार मौखिक साक्ष्य भी वैध हैं।

चरण 4: दावा प्रपत्र भरना और जमा करना

- सामुदायिक वनाधिकार दावा फॉर्म–B में भरा जाता है
- फॉर्म में शामिल होता है:
  - o ग्राम सभा का विवरण
  - o वन क्षेत्र का विवरण
  - o संलग्न साक्ष्य सूची
- भरा हुआ दावा ग्राम सभा द्वारा अनुमोदित कर उपखंड स्तरीय समिति (SDLC) को भेजा जाता है

चरण 5: उपखंड स्तरीय समिति (SDLC) द्वारा जांच और सत्यापन

समिति (SDLC) दावे की प्रारंभिक जांच करती है

आवश्यक होने पर फील्ड सत्यापन किया जाता है

आपत्तियां आमंत्रित की जा सकती हैं

चरण 6: जिला स्तरीय समिति (DLC) द्वारा अंतिम निर्णय

- उपखंड स्तरीय समिति (SDLC) की संस्तुति के आधार पर जिला स्तरीय समिति (DLC) निर्णय लेती है
- स्वीकृति की स्थिति में ग्राम सभा को सामुदायिक वनाधिकार अधिकार पत्र (Title) जारी किया जाता है

7. आवश्यक दस्तावेज़ और साक्ष्य

साक्ष्य का प्रकार	उदाहरण
मौखिक	बुजुर्गों की गवाही
दस्तावेज़ी	पुराने रिकॉर्ड, नक्शे
भौतिक	पूजा स्थल, जल स्रोत

निष्कर्ष

सामुदायिक वनाधिकार दावा प्रक्रिया एक कानूनी और सामुदायिक दोनों प्रक्रिया है। इसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि ग्राम सभा कितनी संगठित, जागरूक और सहभागी है। सही प्रक्रिया और मजबूत साक्ष्यों के साथ सामुदायिक वनाधिकार दावा समुदाय को उसके वैध अधिकार दिलाने का सशक्त माध्यम बनता है।

गतिविधि

अपने अधिकार को प्राप्त करने के लिए दावा प्रक्रिया का अभ्यास

नीचे दी गई दो गतिविधियां सामुदायिक वनाधिकार दावा प्रक्रिया को व्यवहारिक रूप से समझाने के लिए तैयार की गई हैं। ये गतिविधियां ग्राम सभा सदस्यों और सीएसओ फील्ड स्टाफ के प्रशिक्षण के लिए विशेष रूप से उपयोगी हैं।

गतिविधि 1: डमी CFR फॉर्म भरने का अभ्यास

उद्देश्य: प्रतिभागियों को सामुदायिक वनाधिकार दावा हेतु फॉर्म–B भरने की प्रक्रिया, आवश्यक विवरण और सामान्य गलतियों की समझ देना।

समय: 45–60 मिनट

समूह आकार: 5–6 प्रतिभागी प्रति समूह

आवश्यक सामग्री:

- सामुदायिक वनाधिकार दावा का डमी/नमूना फॉर्म–B
- पेन, चार्ट पेपर
- एक काल्पनिक गांव और वन क्षेत्र का विवरण (Trainer द्वारा दिया जा सकता है)

प्रक्रिया:

1. प्रतिभागियों को छोटे समूहों में बांटें।
2. प्रत्येक समूह को एक डमी गांव प्रोफाइल दें (गांव का नाम, वन क्षेत्र, उपयोग के प्रकार)।
3. समूह मिलकर सामुदायिक वनाधिकार फॉर्म–B भरें:
    - ग्राम सभा विवरण
    - वन क्षेत्र का वर्णन
    - संलग्न साक्ष्य की सूची
4. प्रत्येक समूह अपना भरा हुआ फॉर्म प्रस्तुत करें।
5. प्रशिक्षक सामान्य त्रुटियों पर चर्चा करें (जैसे अधूरी जानकारी, अस्पष्ट सीमा विवरण)।

सीख:

- फॉर्म भरते समय सामूहिक सहमति का महत्व
- स्पष्ट और संक्षिप्त विवरण कैसे लिखें
- साक्ष्य सूची को सही तरीके से जोड़ना

(फार्म बी और गांव का काल्पनिक नक्शा लगाएं)

गतिविधि 2: मैपिंग और बॉउंड्री पहचान अभ्यास

उद्देश्य: प्रतिभागियों को अपने परंपरागत वन क्षेत्र की सीमा पहचान और सामुदायिक मैपिंग की व्यावहारिक समझ देना।

समय: 60–90 मिनट

समूह आकार: पूरा बैच या 2–3 बड़े समूह

आवश्यक सामग्री:

- चार्ट पेपर / जमीन पर ड्राइंग के लिए चाक
- स्केच पेन, रंग
- (यदि संभव हो) जीपीएस या मोबाइल मैप ऐप

प्रक्रिया:

1. प्रतिभागियों से उनके गांव के आसपास के वन क्षेत्र पर चर्चा कराएं।
2. समूह मिलकर एक सामुदायिक वन नक्शा बनाएं, जिसमें शामिल हों:
   - o वन सीमा (Boundary)
   - o लघु वनोपज संग्रह क्षेत्र
   - o जल स्रोत, रास्ते, धार्मिक/सांस्कृतिक स्थल
3. विभिन्न समूहों के नक्शों की तुलना कर अंतर पर चर्चा करें।
4. प्रशिक्षक बताए कि वास्तविक सामुदायिक वनाधिकार दावे में मैपिंग कैसे की जाती है ?

सीख:

- सीमा निर्धारण में सामूहिक स्मृति और सहमति का महत्व
- मैपिंग में स्पष्टता क्यों जरूरी है
- विवाद की स्थिति में संवाद की भूमिका

10. सामुदायिक वनाधिकार के बाद – सामुदायिक वन प्रबंधन

यह इकाई यह स्पष्ट करती है कि सामुदायिक वनाधिकार अधिकार प्राप्त होना प्रक्रिया का अंत नहीं, बल्कि जिम्मेदार और सतत सामुदायिक वन प्रबंधन की शुरुआत है। अधिकारों के साथ-साथ समुदाय पर वनों के संरक्षण, उपयोग और भविष्य की पीढ़ियों के लिए सुरक्षा की सामूहिक जिम्मेदारी आती है।

11. अधिकार मिलने के बाद समुदाय की जिम्मेदारियां

सामुदायिक वनाधिकार के बाद ग्राम सभा और समुदाय की मुख्य जिम्मेदारियां निम्नलिखित हैं:

11.1 सतत और विवेकपूर्ण उपयोग

वनों का उपयोग समुदाय द्वारा केवल आवश्यकता के आधार पर किया जाए, ताकि संसाधनों का संतुलन बना रहे और भविष्य की पीढ़ियों के लिए भी वन सुरक्षित रहें। इसके अंतर्गत अति-दोहन और अनियंत्रित कटाई पर सामाजिक सहमति से रोक लगाई जाए। लघु वनोपज जैसे महुआ, तेंदूपत्ता, सालबीज आदि के संग्रह के लिए समय, मात्रा और विधि तय हो , जिससे एक ही मौसम में अत्यधिक संग्रह न हो और वनों की प्राकृतिक पुनरुत्पादन क्षमता बनी रहे।

11.2 वन संरक्षण की जिम्मेदारी

वनों की रक्षा समुदाय स्वयं अपनी जिम्मेदारी समझे । अवैध कटाई, शिकार और जंगल में आग जैसी घटनाओं को रोकने के लिए सामुदायिक निगरानी दल या वन सुरक्षा समितियाँ बनाई जाएं।

ये समितियाँ नियमित गश्त करती हैं और संदिग्ध गतिविधियों की सूचना तुरंत वन विभाग को दें। वन विभाग और अन्य संबंधित एजेंसियों के साथ समन्वय बनाकर कार्य किया जाता है, जिससे संरक्षण के प्रयास अधिक प्रभावी हो सकें।

11.3 सामुदायिक नियम और अनुशासन

ग्राम सभा के माध्यम से वन उपयोग से जुड़े नियम बनाए जाएं, जिनमें यह तय किया जाए कि कौन-सा संसाधन, कब और कैसे उपयोग किया जाएगा। नियमों के उल्लंघन पर दंड या सुधारात्मक उपाय भी सामूहिक रूप से तय किए जाएं, ताकि अनुशासन बना रहे। निर्णय प्रक्रिया पारदर्शी और सहभागी हो, जिससे समुदाय के सभी वर्ग नियमों को अपना मानकर उनका पालन करें।

11.4 समावेशी भागीदारी सुनिश्चित करना

वन संरक्षण की प्रक्रिया में महिलाओं, आदिवासी समूहों और अन्य कमजोर वर्गों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जाए, क्योंकि उनका जीवन और आजीविका वनों से गहराई से जुड़ा होता है। युवाओं को वन संरक्षण गतिविधियों से जोड़कर उनमें जिम्मेदारी और नेतृत्व की भावना विकसित हो। साथ ही, स्थानीय समुदायों के परंपरागत ज्ञान और अनुभव को सम्मान दिया जाए और उसे संरक्षण की रणनीतियों में शामिल किया जाए।

» परिचय «

अनिल गर्ग
सामाजिक कार्यकर्ता
लेखक, शोधार्थी और वकील

बैतूल के एक राजनैतिक परिवार में जन्म। वकालत उन्हें विरासत में मिली। वकालत को लोगों के अधिकार के लिए अपना माध्यम बनाया। संघर्ष की शुरुआत में पत्रकारिता भी की, और कई प्रतिक्षित अखबारों में लेखों ने खलबली मचाई। जंगल जमीन को अपने अध्ययन के केन्द्र में लाए। केवल भावनात्मक आधार पर नहीं, पूरा अध्ययन कानूनी/तथ्यात्मक दृष्टिकोण से, दस्तावेजों के आधार पर किया। लोगों के बीच **'काका'** नाम से ख्यात **अनिल गर्ग** की सबसे बड़ी खासियत यही है कि यह हमेशा तथ्यों, और संदर्भों के साथ अपनी बात रखते हैं। जंगल जमीन के मामलों में यह म.प्र. और छतीसगढ़ के चुनिंदा विशेषज्ञों में शुमार है। कभी अपने सिद्धांतों से समझौता न करने वाले काका अपनी बेबाक बोली के कारण कई लोगों से अपने संबंध खराब करने के लिए भी जाने जाते हैं, बावजूद इसके वह बोलना नहीं छोड़ते। यही उनकी शैली है। काका के कड़क मिशन के पीछे एक बेहतरीन इंसान है, जो आमजन के दुख-दर्द को लेकर बेहद संजीदा है।

एकता परिषद की पदयात्रा के दौरान पदयात्रा के संदर्भ में अनिल जी ने पांच किताबें लिखीं। वन अधिकार बिल पारित होने पर जंगल जमीन ऐतिहासिक अन्याय, जिम्मेदार कौन' शीर्षक से किताब लिखी। एकता परिषद की 2007 की यात्रा के दौरान भी उन्होंने एक किताब लिखी। विंध्य और बुंदेलखंड के भूमि विवादों पर एक किताब प्रकाशित हुई। राज्यपाल और राष्ट्रपति की याचिकाओं पर एक किताब लिखी। एक किताब 'आरेंज एरिया अंग्रेजी में भी प्रकाशित हुई।

अनिल गर्ग के बेटे निकुंज ने कल की पढ़ाई पूरी कर ली है और अब वह जंगल जमीन के मामलों पर काम को आगे बढ़ा रहे हैं। बेटी पलक गर्ग ने अपनी इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी कर ली है और वह अपने कैरियर को आगे बढ़ा रही है। जीवन संगिनी उमा गर्ग का हर पल साथ मिला।